जनवरी-मार्च 1997

वर्ष : 29 ❋ अंक : 1

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के सौजन्य से प्रकाशित

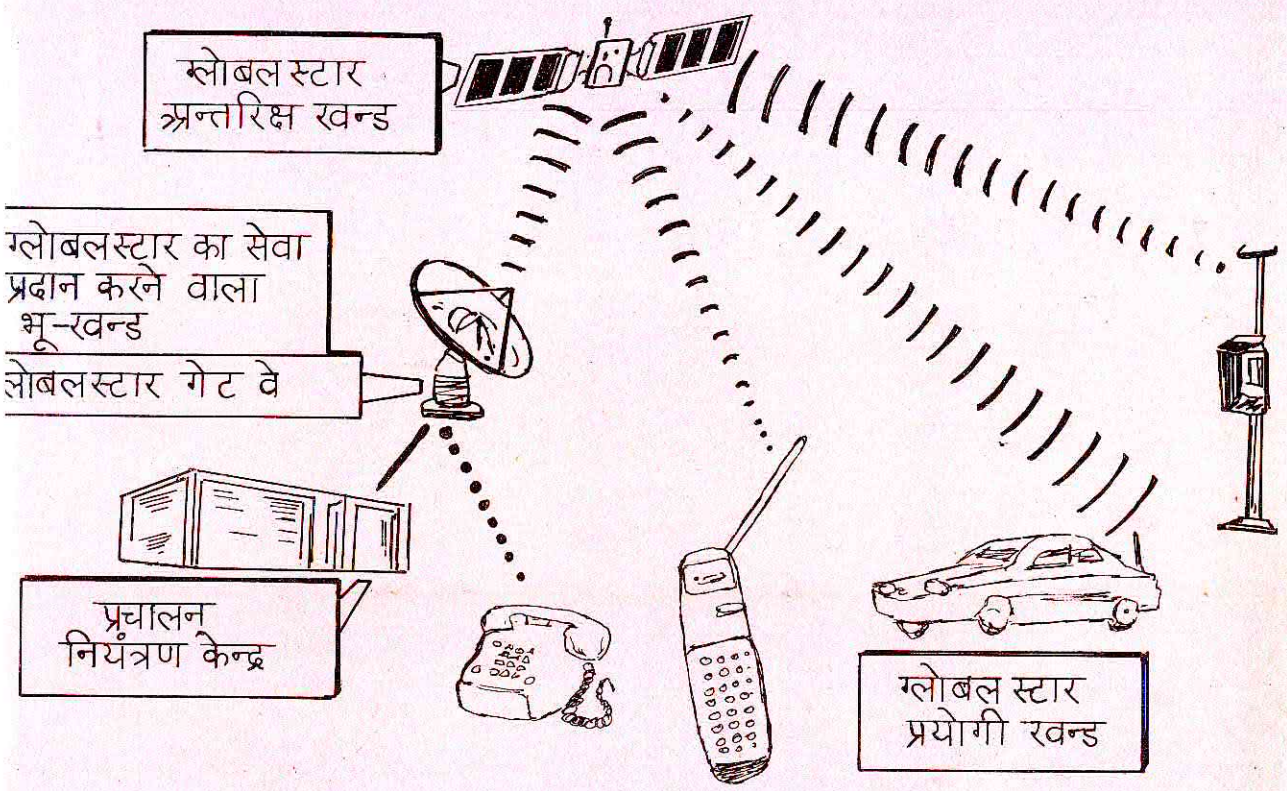

भावी विश्व संचार व्यवस्था का तंत्र

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद

परिषद हिंदी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन व प्रचार हेतु नियमित रूप त्रैमासिक पत्रिका "वैज्ञानिक" का प्रकाशन, विज्ञान गोष्ठियों, वार्ताओं एवं अखिल भारतीय विज्ञान लेख्र प्रतियोगिता का आयोजन करती है।

एक जनवरी 1997 से परिषद की सदस्यता एवं "वैज्ञानिक" पत्रिका का शुल्क इस प्रकार है :

	परिषद सदस्यता (रु में)			वैज्ञानिक शुल्क (रु में)	
	एक वर्ष	आजीवन	संरक्षक		एक वर्ष
व्यक्तिगत	50	400	5000	व्यक्तिगत	50
संस्थागत	100	1000		संस्थागत	100

- "वैज्ञानिक" पत्रिका की कोई आजीवन सदस्यता / शुल्क नहीं है।
- वर्तमान नियमानुसार परिषद के सदस्यों को " वैज्ञानिक" निःशुल्क भेजी जाती है।
- सभी शुल्क **हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद** के नाम से केवल **डिमांड ड्राफ्ट (मुंबई)** द्वारा ही भेजें। **मुंबई** से बाहर के चैक, मनीआर्डर एवं पोस्टल आर्डर द्वारा भेजा शुल्क स्वीकार नहीं होगा।
- कृपया शुल्क से साथ अपना निजी विवरण इस पत्रिका में दिये गये आवेदन पत्र के प्रारूप के अनुसार भेजें।
- संरक्षक सदस्य, यदि चाहें तो, उनका एक विज्ञापन प्रतिवर्ष "वैज्ञानिक" में निःशुल्क छापा जा सकता है।

"वैज्ञानिक" में विज्ञापन

हिंदी में प्रकाशित होने वाली विज्ञान पत्रिकाओं में "वैज्ञानिक" अग्रणी है। देश के सभी मुख्य वैज्ञानिक संस्थान इसके ग्राहक हैं। इस पत्रिका में आपके विज्ञापन आमंत्रित हैं। पूरे पृष्ठ की छपाई का आकार 16 सेमी X 21 सेमी है।

विज्ञापन की दरें	: एक अंक के लिए
अंतिम आवरण	: रु 2,500/-
दूसरा/तीसरा आवरण (अंदर)	: रु 2,000/-
पूरा पृष्ठ	: रु 1,500/-
आधा पृष्ठ	: रु 800/-

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख्र प्रतियोगिता -1997

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति (भा. प. अ. केंद्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित हिंदी विज्ञान लेख्र प्रतियोगिता हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित हैं। लेख्र में किसी भी वैज्ञानिक विषय पर मौलिक एवं आधुनिक जानकारी होनी चाहिए। लेख्र का अप्रकाशित होना अनिवार्य है। **मूल्यांकन में नवीनतम जानकारी के साथ साथ अच्छे रेख्राचित्रों/फोटोग्राफ, तालिकाओं इत्यादि को समुचित महत्व दिया जाता है।** अत: चित्रों को अलग से सफेद कागज/ ट्रेसिंग पेपर पर काली रोशनाई (इंडिया इंक) से बनायें। फोटोग्राफ ब्लैक एण्ड व्हाइट में हों तो उचित रहेगा। इन्हें लेख्र के अंत में संलग्न करें। दो टंकित अथवा स्पष्ट हस्तलिखित प्रतियां (लगभग 3000-4000 शब्द) नीचे दिये गये पते पर भेजें।

पुरस्कार : प्रथम - रु 2000/=, द्वितीय - रु 1500/=, तृतीय-रु 750/=

अंतिम तिथि : 30 अक्टूबर 1997

इसके अतिरिक्त पांच प्रोत्साहन पुरस्कार एवं अहिंदी भाषी प्रतियोगियों को दो विशेष पुरस्कार, प्रत्येक रु 500/- के दिये जायेंगे। अत: अपनी मातृभाषा का स्पष्ट उल्लेख करें।

विशेष : पुरस्कृत रचनाएं "वैज्ञानिक" की संपत्ति होंगी। "वैज्ञानिक" पत्रिका से संबंधित पदाधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेंगे।

प्रविष्टियां भेजने का पता :

श्री इंद्र कुमार शर्मा, प्रतियोगिता संयोजक एवं व्यवस्थापक "वैज्ञानिक", पदार्थ संसाधन प्रभाग (MPD),
भा. प. अ. केंद्र (BARC), मुंबई 400 085

अनुक्रमणिका

वैज्ञानिक

वर्ष 29 अंक 1

जनवरी-मार्च 1997

व्यवस्थापन मंडल

श्री इंद्र कुमार शर्मा
डॉ. अशोक कुमार सूरी
श्री ललित कुमार
श्री कुलवंत सिंह

संपादन मंडल

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल
श्री हरिओम मित्तल
डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला
श्री रामनाथ जिंदल
श्री राज नारायण पांडेय

वार्षिक शुल्क

संस्थागत	व्यक्तिगत
100 रु	50 रु

शुल्क भेजने का पता

श्री ललित कुमार
कोषाध्यक्ष,
हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद,
पदार्थ विज्ञान प्रभाग,
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई - 400 085

संपादकीय 3

लेख

1. बंदरगाहों के प्रबंधन में इलेक्ट्रॉनिकी की भूमिका 5
   – डॉ. जी. एस. राव
2. विश्व की भावी संचार व्यवस्था के नये आयाम 10
   – काली शंकर
3. अपशिष्ट पदार्थ प्रौद्योगिकी 15
   – चंद्र बल्लभ नौटियाल
4. पेट्रोलियम उत्पादन में मिश्रधातुओं की उपयोगिता 18
   – डॉ. अतुल कुमार सामंत

विज्ञान कहानी

पृथ्वी पर चाँद 23
– डॉ. राम कुमार तिवारी

नोबेल पुरस्कार : किसे और क्यों

1. हीलियम में अतितरलता की खोज 29
2. कोशिका द्वारा मध्यस्थ प्रतिरक्षण (इम्यून) प्रणाली की विशिष्टता की खोज 33

मानव स्वास्थ्य

बच्चों में शैक्षिक अयोग्यता : सुधार के उपाय व जिम्मेदारियां 40
– बाल कृष्ण काबरा 'एतेश'

टिप्पणियां

1. क्या होती है 'फार्म केमर्जी' ? 46
   – डॉ. दिनेश मणि
2. ऐफ्लाटॉक्सिन : एक तीव्र जहर 47
   – नवीन बोहरा, डॉ. डी. के. पुरोहित एवं रेखा दाधीच
3. कुछ विशिष्ट गैसें 49
   – आर. बी. गुप्ता

● "वैज्ञानिक" में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है ।
● "वैज्ञानिक" में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हिं. वि. सा. परिषद के पास सुरक्षित हैं ।
● "वैज्ञानिक" एवं हिं. वि. सा. परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय मुंबई के न्यायालय में ही होगा ।

कार्यालय

"वैज्ञानिक", हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेन्ट्रल कांप्लेक्स
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र
मुंबई - 400 085

"वैज्ञानिक" का शुल्क

पाठकों से अनुरोध है कि यदि उनका 'वैज्ञानिक' का शुल्क समाप्त हो गया हो, तो उसे भेज कर नवीनीकरण करा लें । यदि संभव हो तो आजीवन सदस्य बन जायें ।

बाल विज्ञान
- पटाखों की निराली दुनिया 51
- अब वनस्पति दूध भी 51
- एल्यूमीनियम के बर्तन हानिकारक 51
- आँसू की संरचना 52
  – डॉ. डी. डी. ओझा

विज्ञान समाचार
- भा. प. अ. केंद्र से 53
- अन्य समाचार 55

संगोष्ठी समाचार 57

विज्ञान कविता
ऐ वैज्ञानिक ! नवयुग ला दो 58
– रामगोपाल परिहार

पुस्तक समीक्षा 59

कुछ फूल : फूल कांटे 62

अखिल भारतीय हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता - 1996 का परिणाम

प्रथम पुरस्कार (रु 1500/-) : *'एक विशेष आयुध मिश्रधातु - स्टेनलैस मारेजिंग इस्पात,'*

डॉ. कृष्ण कुमार शर्मा, रक्षा धातुकर्मीय अनुसंधान प्रयोगशाला, कंचन बाग, हैदराबाद 500 058

द्वितीय पुरस्कार (रु 1000/-) : *'मस्तिष्क : प्रकृति की एक अनोखी देन,'*

डॉ. एस. वेंकटाचलम, विभागाध्यक्ष, धातुकी अभियांत्रिकी एवं पदार्थ विज्ञान विभाग,
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, पवई, मुंबई 400 076

तृतीय पुरस्कार (रु 500/-) : *'पदार्थों को जोड़ने की नयी तकनीक : विसरण जुड़ाई,'*

डॉ. गजानन बी. काले, पदार्थ विज्ञान प्रभाग, भा. प. अ. केंद्र, मुंबई 400 085

प्रोत्साहन पुरस्कार (प्रत्येक रु 300/-) :

(1) 'कृत्रिम दृष्टि : विज्ञान का आधुनिकतम उपहार,'

डॉ. घनश्याम दास जिंदल,
इलेक्ट्रॉनिकी प्रभाग, मॉडुलर प्रयोगशाला, भा. प. अ. केंद्र, मुंबई 400 085

(2) 'खनिज तेल उत्पादन, आत्म निर्भरता के प्रयास,'

डॉ. अतुल कुमार सामन्त, उपअधिक्षण रसायनज्ञ, अभियांत्रिकी एवं समुद्री प्रौद्योगिकी संस्थान,
तेल और प्राकृतिक गैस कॉर्पोरेशन लिमिटेड, पनवेल, नयी मुंबई 410 221

(3) 'आर्थोपेडिक सर्जरी में सिरेमिक का उपयोग,'

डॉ. मिथिलेश कुमार सिन्हा, वैज्ञानिक, केंद्रीय काँच एवं सिरेमिक अनुसंधान संस्थान, कलकत्ता 700 032

संपादकीय

'गोपनीय आंकड़ों एवं जानकारियों की सुरक्षा समस्या'

यह तो सर्वविदित है कि संचार के लिए प्रयुक्त इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों ने सूचना प्रसारण / प्राप्ति को अत्यंत आसान बना दिया है। उच्चगति कंप्यूटर एवं इन्टरनेट के प्रयोग ने न केवल वैज्ञानिकों / इंजिनियरों को बल्कि जन साधारण को भी इतना अधिक आकर्षित कर दिया है कि आज हर क्षेत्र में अधिकांश कार्यों में इसका प्रयोग होने लगा है। चूंकि स्थानीय नेटवर्क तथा इन्टरनेट प्रणाली में विभिन्न कंप्यूटर आपस में जुड़े (लिंक्ड) होते हैं, अत: हर तरह की जानकारी सरलता से हासिल की जा सकती है। यहां तक कि गोपनीय जानकारियों का भी कुछ चतुराई से पता चलाया जा सकता है। फलस्वरूप, यह जहां एक ओर सुविधा है वहीं महत्वपूर्ण गोपनीय जानकारियों / दस्तावेजों की सुरक्षा पर एक प्रश्न चिन्ह भी है। जैसे जैसे आधुनिकतम साधनों का प्रयोग बढ़ रहा है, राष्ट्रीय प्रतिरक्षा, व्यवसाय तथा अन्य क्षेत्रों से संबंधित गोपनीय आंकड़ों को सुरक्षित रख पाना समस्या बनती जा रही है। टेलीफोन, सेल्युलर फोन पर दी जाने वाली जानकारियां आसानी से टैप की जा सकती हैं।

विभागीय पहचान पत्र, बैंक कार्ड, क्रेडिट कार्ड, पासपोर्ट, पासवर्ड, व्यक्तिगत पहचान संख्या इत्यादि में निहित गोपनीय जानकारियों को सुरक्षित रखना नितांत आवश्यक है अन्यथा जालसाजी द्वारा उनके गलत प्रयोग की संभावना से जीवन में निश्चिंतता घटती जा रही है। ऐसा बताया जाता है कि सबसे विकसित राष्ट्र अमरीका में जालसाजी द्वारा बनाये गये क्रेडिट कार्ड तथा दस्तावेजों के प्रयोग से प्रति वर्ष कई सौ करोड़ रुपयों के समतुल्य की हानि हो रही है जिनकी भरपाई परोक्ष रूप में आम उपभोक्ता के हिस्से आती है।

प्रगत तकनीकी विकास के फलस्वरूप आज उच्च गति कंप्यूटर, परिष्कृत किस्म के डाटा संसाधक, प्रिंटर,कॉपियर, चार्ज कपल्ड डिवाइसेस (सी सी डी - CCD) युक्त कैमरा, क्रमवीक्षक (scanner) इत्यादि आसानी से उपलब्ध हो रहे हैं। इनके प्रयोग से लगभग अधिकृत लगने वाले दस्तावेज, बिल, लोगो (Logo), मुद्रा संबंधित नोट (डालर, रुपए, पाउंड इत्यादि), जटिल पैटर्न आदि तैयार करना संभव हो गया है। हालांकि जालसाजी रोकने के लिए अत्यंत प्रगत एवं परिष्कृत बचाव / प्रयत्न किये जाते हैं, तथापि उन्हें अभेद्य नहीं कहा जा सकता है। जैसे जैसे विज्ञान ने सुरक्षा की दृष्टि से नयी-नयी प्रणालियां विकसित की हैं, जालसाजी के मानसिक रोग से ग्रस्त लोग उनसे निपटने के लिए अपने तौर तरीके एवं साधनों में परिवर्तन लाते रहे हैं। ऐसा लगता है मानों इन दोनों वर्गों में एक प्रतियोगिता चल रही है। कुछ समय पहले तक पूर्ण रूप से सुरक्षित पासपोर्ट, क्रेडिट कार्ड के अभेद्य होलोग्रामों का आज उपलब्ध सी सी डी कैमरों से त्रिविमीय चित्र (होलोग्राफ) लेना संभव हो गया है। अत: एक चतुर होलोग्राफर उसका उपयोग करके एकदम अधिकृत लगने वाला पासपोर्ट / क्रेडिट कार्ड तैयार कर सकता है। इसमें आश्चर्य नहीं कि इनका दुरुपयोग हो रहा है। इसी प्रकार इन्टरनेट के असुरक्षित चैनलों में भी आसानी से अतिक्रमण हो रहा है। यह उल्लेखनीय है कि इन परिस्थितियों से बचाव का दायित्व भी वैज्ञानिकों के ऊपर ही आता है।

इन समस्याओं से निपटने के लिए चल रहे विभिन्न प्रयासों में से कुछ प्रकाशीय प्रणालियां काफी हद तक विश्वसनीय हो सकती हैं क्योंकि इनमें कंप्यूटर के 'शून्य' तथा 'एक' के संयोजन से बनाये जा रहे कोडों के स्थान पर जानकारियों को प्रकाश से संबंधित कई प्राचल जैसे तरंग की कला (फेज़) तरंग दैर्घ्य, ध्रुवण, आवृति इत्यादि के आधार पर अभेद्य बनाया जा सकता है। प्रकाश सुग्राही सीसीडी कैमरा भी प्रकाश की तरंग कला की नकल नहीं कर सकता। अत: जो जानकारी फेज़ के आधार पर संग्रहीत होगी उसकी सुरक्षा स्वभावत: अधिक हो जाती है। प्रकाशीय प्रणालियों का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है इनकी अंतर्निहित समांतर संसाधन क्षमता जो आम कंप्यूटर के लिए संभव नहीं होती। इस प्रणाली में प्रत्येक पिक्सल में द्विविमीय प्रतिबिंब होता है जिसे संसाधित करने के साथ साथ प्रेषित भी किया जा सकता है तथा प्रेषण गति इलेक्ट्रॉनिकी से लगभग 10 गुणा अधिक होती है।

इस पद्धति में फिल्म पर बने द्विविमीय प्रतिबिंब (उदाहरण के लिए चेहरे का फोटो या फिंगर प्रिंट) को कला संबद्ध (coherent) विकिरण से प्रकाशित किया जाता है। फिल्म से पारगत होने वाला प्रकाश जब संकेंद्रक लैंस से निकलता है तो उसमें कुछ विलंबता (delay) अथवा कलांतर आ जाता है। यह कलांतर (फेज़ शिफ्ट) प्रयुक्त लैंस की मोटाई, वर्तनांक, के साथ साथ तरंगर्ध्य पर निर्भर होता है। लैंस के पश्च फोकल तल (Back focal plane) पर जो प्रकाश वितरण मिलता है वह इस बात पर निर्भर करता है कि उसके मूल प्रतिबिंब में कौन कौन सी आकाशीय (स्थानीय-spatial) आवृतियां मौजूद थीं। उदाहरणार्थ चेहरे के प्रतिबिंब में अधिकांश भाग (माथे वाले हिस्से से) कम आवृति का प्रकाश तथा भौहों, होंठो से अधिक आवृति का प्रकाश मिलता है। ये लैंस के अलग-अलग भाग से गुजर कर फोकल तल पर अलग अलग जगह पहुंचते हैं [कम आवृति वाला केंद्र पर एवं अधिक आवृति का बाहरी तरफ (Periphery)]। प्राप्त प्रकाश वितरण / पैटर्न लगभग फ्रौनोफर विवर्तन जैसा होता है। इस पश्च फोकल तल पर मिलने वाले आकाशीय आवृति वितरण को प्रतिबिंब का फोरियर ट्रांस्फार्म कहते हैं और संबंधित फोकल तल को फोरियर तल। संकेंद्रण लैंसों की यह फोरियर ट्रांस्फार्म क्षमता प्रकाशीय प्रणाली की एक महत्वपूर्ण/निर्णायक विशेषता है। इसके प्रयोग से आंकड़ों की सुरक्षा हेतु आवश्यक तथा सम्मिश्र हेर फेर (मेनिपुलेशन) संभव हो जाता है। उदाहरण के लिए यदि हम एक ऐसा स्थानिक फिल्टर लगा दें जो पश्च फोकल तल के केंद्र पर एक अपारदर्शक क्षेत्र बना दे तो इससे प्रतिबिंब का कम आवृति घटक आगे नहीं बढ़ पायेगा, फलस्वरुप अधिकृत व्यक्ति के अतिरिक्त अन्य लोगों को यह एक प्रकार का छद्म प्रतिबिंब होगा। सुरक्षा को और अधिक मजबूत बनाने के लिए कुछ और सम्मिश्र किस्म के फिल्टरों का समावेश किया जा सकता है।

इसी प्रकार स्थानिक फेज मास्क (जो प्लास्टिक की पारदर्शक फिल्म हो सकती है) के उपयोग से धारक से संबंधित महत्वपूर्ण पहचान चिन्ह जैसे फिंगर प्रिंट, चित्र, हस्ताक्षर या एकाउंट नंबर इत्यादि को अनधिकृत प्रयोक्ता से छुपाया जा सकता है। फेज मास्क लगाने से दस्तावेजों में एक नवीन फेज पैट र्न तैयार हो जाता है जिसकी जानकारी केवल अधिकृत व्यक्ति को ही रहती है। इसे न तो माइक्रोस्कोप से देखा जा सकता है, न ही खाली आंखों से, तथा साथ ही इसका चित्र लेना भी संभव नहीं होता। वर्तमान इलेक्ट्रॉनिक संसाधन प्रणाली के आधार पर किये जाने वाले एनक्रिप्शन (encryption) के स्थान पर दो रेन्डम (random) फ़ेज मास्कों के प्रयोग से एनक्रिप्शन को अधिक सुरक्षा मिल सकती है। जालसाज (अनधिकृत व्यक्ति) की पहचान, प्रकाश इलेक्ट्रॉनिक पद्धति से, केवल इलेक्ट्रॉनिकी के मुकाबले आसान रहता है। प्रकाशीय प्रणाली की अंतर्निष्ट खूबियों / विशेषताओं को मद्दे नजर रखते हुए इस दिशा में प्रयास तेज करने की आवश्यकता है।

●

"वैज्ञानिक" का प्रस्तुत अंक इस वर्ष का प्रथम अंक है। प्रकाशन में विलंब अवश्य चल रहा है, परंतु आप सभी पाठकों के सहयोग से निरंतरता बनाये रखने के हमारे प्रयास सदैव जारी हैं। आपको यह जान कर खुशी होगी कि पत्रिका के एक पाठक डॉ. कृष्ण प्रकाश त्रिपाठी के सुझाव पर परिषद द्वारा हर वर्ष आयोजित की जाने वाली 'अखिल भारतीय हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता' का नाम भा. प. अ. केंद्र के नियंत्रक महोदय ने इस वर्ष से 'डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता' मान्य कर दिया। इस संपादकीय के माध्यम से मैं उन्हें एवं डॉ. त्रिपाठी को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। अब चूंकि 21वीं शताब्दी का आगमन काफी करीब है, हमारा कर्तव्य बन जाता है कि अभी तक के विकासों /खोजों का स्टॉक लें और आने वाली पीढ़ी के लिए एक अच्छे एवं स्वस्थ समाज की रुपरेखा प्रस्तुत करें। प्रश्न उठता है यह कैसे किया जाय ? एक तरीका तो यह है कि इस शताब्दी के 'नोबेल पुरस्कार' विजयी कार्यों/ खोजों की समीक्षा करें और उन मुद्दों/पहलुओं पर चर्चा करें जो अगली शताब्दी के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी को दिशा प्रदान करेंगे एवं उन पर अपनी छाप बनायेंगे। वर्ष 1998-99 के "वैज्ञानिक" के अंकों में इनका समावेश कर हम अपना दायित्व शायद कुछ हद तक पूरा कर सकते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सभी पाठकों से सुझावों एवं सहयोग की हमें अपेक्षा रहेगी।

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल

बंदरगाहों के प्रबंधन में इलेक्ट्रॉनिकी की भूमिका

डॉ. जी. एस. राव,
जलीय अभियंता, कंडला पोर्ट ट्रस्ट,
गांधीधाम (कच्छ) - 390 201

इलेक्ट्रॉनिक प्रौद्योगिकी इतनी सक्षम होकर सामने आयी है कि इच्छा होती है कि हर काम इसकी सहायता से किया जाये। बंदरगाहों के प्रबंधन में इस प्रौद्योगिकी से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर इस लेख में विचार किया गया है। साथ ही इस प्रौद्योगिकी के प्रयोग के समय आने वाली कुछ महत्वपूर्ण समस्याओं का भी जिक्र किया गया है। जरूरत इस बात की है कि हम आधुनीकीकरण की ओर समर्पित भावना से काम करें तथा परिचालन और रख रखाव का काम उचित स्तर के प्रशिक्षित तथा सुयोग्य कार्यकर्ताओं को सौंप दें।

आज की दुनिया में इलेक्ट्रॉनिकी विविध दृष्टियों से एक श्रेष्ठ प्रौद्योगिकी है। इलेक्ट्रॉनिकी ने ज्यादा सही और विश्वसनीय इलेक्ट्रॉनिकी प्रौद्योगिकी उपलब्ध करायी है। साथ ही यह अपेक्षाकृत प्रदूषणमुक्त तथा ज्ञानवर्धक है। आज विश्व इलेक्ट्रॉनिकी क्रांति के उस दौर से गुजर रहा है जब तीन बड़ी इलेक्ट्रॉनिक प्रौद्योगिकियां यथा कंप्यूटर, दूरसंचार तथा सूक्ष्म इलेक्ट्रॉनिकी एक दूसरे में समाहित हो रही हैं। ऊंची गुणवत्ता तथा कम से कम लागत के साथ सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप में वस्तुओं को प्रस्तुत करना ही आज की प्रवृत्ति है।

बंदरगाह, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के पारगमन केंद्र हैं जो राष्ट्र के सामाजिक एवं आर्थिक विकास और साथ ही विश्व व्यापार प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। इनके प्रबंधन में इलेक्ट्रॉनिकी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। इसलिए आज की दुनिया में यह अपरिहार्य हो गया है कि समुद्री पत्तन इस अति उपयोगी एवं उन्नत इलेक्ट्रॉनिकी प्रौद्योगिकी का अधिक से अधिक उपयोग करें।

इलेक्ट्रॉनिकी नौसंचालन :

किसी भी नाविक की सबसे पहली समस्या यह जानना है कि वह "फिलहाल कहां है" और "कहां जा रहा है"। पुराने जमाने में वह खगोलीय पिंडों का निरीक्षण करता था और उनकी सहायता से अपनी स्थिति का पता लगाता था। परंतु बादल, कुहरा तथा अन्य प्राकृतिक घटनाओं की मौजूदगी में हर समय पूरी सही स्थिति का पता लगा पाना उसके लिए संभव नहीं होता था।

नौवहन के क्षेत्र में इलेक्ट्रॉनिकी पद्धति अर्थात रेडियो की सहायता से दिशा ज्ञान का 1926 में पहली बार उपयोग किया गया। तब दिनोंदिन बढ़ती हुई विविधताओं की इलेक्ट्रॉनिकी पद्धति का विकास किया गया जिसके कारण परिष्कृत उपकरण अर्थात भूमंडलीय स्थिति निर्धारण पद्धति का विकास हुआ।

समुद्र में यात्रा करने वाले नाविक इस उपकरण की सहायता से किसी प्राकृतिक घटना जैसे बादलों के आवरण तथा कुहरे आदि के अवरोधों से मुक्त होकर स्वतंत्र रूप से अपनी स्थिति की जानकारी लगातार प्राप्त कर सकते हैं। इस पद्धति से नौचालक अधिक सही और विश्वसनीय स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। चूंकि इलेक्ट्रॉनिकी पद्धति नौचालक को उसकी सही स्थिति निर्धारित करने में सहायता देती है अतः इसे नौसंचालन सहायक युक्ति कहा जाता है। इलेक्टॉनिकी नौचालक आज एक नये दौर में प्रवेश कर रहा है जहाँ वह नौसंचालन

संबंधी प्राथमिक साधन उपलब्ध करा सकता है ।

आज इलेक्ट्रॉनिकी प्रौद्योगिकी इस प्रकार विकसित की गयी है कि उसने नौवहन के विभिन्न पहलुओं को कंप्यूटरीकृत कर दिया है जैसे जहाज पर किफायती तथा सुरक्षित ढंग से माल लादना, इन्जिनों को मॉनीटर तथा नियंत्रित करना, नौसंचालन तथा संचार व्यवस्था को सहायता पहुंचाना, कर्मी दल के वेतन चिट्ठे तैयार करना, पहरेदार के रूप में कार्य करना तथा अन्य भूमिकाएं निभाना ।

समुद्र में नौचालकों द्वारा प्रयोग में लाये जाने वाले कागजी चार्ट को संसाधित किया गया है और अब उसे पढ़ने योग्य इलेक्ट्रॉनिकी नौचालक चार्ट में परिवर्तित कर दिया गया है जो खतरों को टालने और सुरक्षित ढंग से यात्रा पूरी करने हेतु पहले से कहीं अच्छा और तीव्रगामी मार्ग प्रशस्त करता है । इससे नौसंचालन तथा पर्यावरण संबंधी सुरक्षा पद्धति में सुधार हुआ है जिससे जहाजों की परिचालन संबंधी कुशलता भी बढ़ी है । इलेक्ट्रॉनिकी नौसंचालन चार्ट में अति महत्वपूर्ण जानकारियों के चार्ट का पूर्ण रंगीन प्रदर्शन किया जाता है और यह सुनिश्चित मार्ग, नौसंचालन खतरे तथा अन्य जलयानों के संदर्भ में जहाज की स्थिति लगातार प्रदर्शित करता रहता है ।

जलराशि सर्वेक्षण करते हुए गहराई मापना तथा जल विज्ञान से संबंधित अन्य जानकारी प्राप्त करना ही सुरक्षित नौसंचालन की पहली मांग है । इलेक्ट्रॉनिकी प्रौद्योगिकी ने काफी प्रगति की है जिसके कारण जलराशि सर्वेक्षण के क्षेत्र में अति विकसित तथा उन्नत तकनीक उभरकर सामने आयी है जो स्थिति निर्धारण की उपग्रह आधारित पद्धति है । इलेक्ट्रॉनिकी के क्षेत्र में हुई प्रगति के कारण आज बंदरगाहों में पूर्णतः सही और विश्वसनीय ढंग से जलराशि सर्वेक्षण कार्य संपन्न हो रहा है ।

नौसंचालन कार्य सुरक्षित रूप से संपन्न हो सके, इसके लिए यह अपेक्षित है कि पर्याप्त गहराई और चौड़ाई वाली नौसंचालन सरणि का रखरखाव किया जाये जिसके लिए समुद्र के तल से मिट्टी तथा कीचड़ निकाला जाना जरूरी है । चूंकि समुद्र के तल से मिट्टी तथा कीचड़ निकालने वाले उपकरण अपने आप में काफी महंगे हैं और उनके परिचालन पर भी काफी खर्च आता है अतः आजकल कोशिश की जा रही है कि विकसित इलेक्ट्रॉनिकी प्रौद्योगिकी में समुचित सुधार किया जाये जिससे कि मिट्टी-कीचड़ निकालने संबंधी परिचालन कार्य की कम लागत पर क्षमता बढ़ायी जा सके । कंप्यूटरीकृत डाटा प्रहस्तन पद्धति ने समुद्र तल से मिट्टी तथा कीचड़ निकालने के कार्य से संबंधित मूलभूत क्रियाकलापों के बीच तालमेल बिठाने का काम किया है।

कंप्यूटरीकरण द्वारा समुद्री पत्तनों में इलेक्ट्रॉनिकी का उपयोग :

आजकल समुद्री पत्तनों के प्रायः सभी क्षेत्रों का कंप्यूटरीकरण किया गया है जिससे संबंधित जानकारी संक्षेप में नीचे प्रस्तुत है :

(i) वित्तीय प्रबंधन क्षेत्र जैसे कर्मचारियों के वेतन चिट्ठे बनाना, वित्तीय लेखा तैयार करना, लेखों का प्रबंधन करना तथा उपयोग में लायी जाने वाली भंडार सामग्रियों का लेखा तैयार करना आदि ।

(ii) कार्मिक प्रबंध क्षेत्र जैसे कर्मचारियों के नाम, विभाग, नियुक्ति की तारीख, शैक्षणिक योग्यताएं, वेतन संबंधी विवरण एवं अनुभव तथा अन्य व्यक्तिगत मामले ।

(iii) संपदा प्रबंध क्षेत्र जैसे भूखंडों की स्थिति और माप, जिसके नाम भूखंड दिया गया है उसके विवरण, भूखंड के दिये जाने का उद्देश्य, वर्तमान स्थिति, पट्टोंकी मांग अनुसूची तैयार करना तथा भूमि भाड़े के बिल आदि ।

(iv) कंप्यूटरों द्वारा रोजमर्रा के कार्य बहुत ही सही ढंग से पूरी कुशलता से किये जा रहे हैं । रोजमर्रा के कामों में लगाये गये कर्मचारियों पर होने वाले खर्च को कंप्यूटर की सहायता से घटाया जा सकता है। इतना ही नहीं कंप्यूटरों के उपयोग से जहां एक ओर कर्मचारियों पर होने वाले खर्च में कमी होती है वहीं

इससे कई अन्य लाभ भी हैं। यह कम जगह घेरता है और बड़ी तेजी के साथ सही ढंग से काम निपटाता है।

(v) निजी कंप्यूटरों के आ जाने से आज कई ऐसे बढ़िया पैकेज उपलब्ध हैं जिनकी सहायता से आंकड़ों पर आधारित प्रबंधन तथा पाठ-संपादन आदि कार्य बड़ी कुशलता से किये जा सकते हैं।

(vi) आज कंप्यूटरों की सहायता से विभिन्न योजनाओं और विकासशील परियोजनाओं को बड़ी आसानी से मॉनीटर किया जा सकता है और अनुसंधान तथा विकास कार्य आदि को बड़ी सुगमता से पूरा किया जा सकता है।

(vii) बाहरी एजेंसियों जैसे पोर्ट उपयोक्ताओं तथा सीमा शुल्क के साथ आंतरिक पत्राचार करना आदि।

(viii) अंतर्राष्ट्रीय नेटवर्क से संयोजन।

(ix) स्वमार्गीय संचरण जिसके कारण डाटा अंतरण संबंधी कुशलता में सुधार हुआ है और नौवहन संबंधी दस्तावेजों और साथ ही डाटा प्रहस्तन संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कर्मचारियों की संख्या में कमी आयी।

(x) समुद्री पत्तनों से संबंधित उपयोक्ताओं को कंप्यूटर की सहायता से समान आंकड़े प्राप्त होते हैं जिसके कारण मजदूरों संबंधी उनकी आवश्यकता में कमी आयी है और कंप्यूटर की सहायता से भूलों को भी आसानी से रोका जा सकता है।

(xi) कंप्यूटर प्रोग्रामों तथा आंकड़ों का मानकीकरण तथा आंकड़ा संसाधन की लागत के द्विगुणीकरण को रोकना।

समुद्री पत्तनों में इलेक्ट्रॉनिक संचार व्यवस्था :

जब शुरु-शुरु में समुद्री व्यापार प्रारंभ हुआ तो समुद्री व्यापारियों के सामने एक विकट समस्या थी कि वे दूसरे समुद्री जहाजों अथवा समुद्री तट केंद्रों से कैसे संपर्क स्थापित करें। उस समय बहुत ही सीमित संचार सुविधा उपलब्ध थी क्योंकि वे झंडों, दीपों अथवा तेज कौंधनेवाली प्रकाश व्यवस्था के सहारे कुछ सीमित क्षेत्र तक ही संकेत भेज सकते थे। ऐसी सुविधा को न तो पर्याप्त कहा जा सकता था और न ही विश्वसनीय।

समुद्री पत्तनों में सूचनाओं का आदान-प्रदान पारंपरिक संचार व्यवस्था के माध्यम से किया जाता है। इस रेडियो संचार व्यवस्था के अधीन मध्यम, उच्च तथा अति उच्च आवृति बैंड की सुविधा उपलब्ध है। फिर भी फिलहाल कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। आंकड़ों को सही ढंग से भेज पाने में असमर्थता, चैनलों की पर्याप्त संख्या का अभाव, रेडियो तरंगों के संचरण में आनेवाली प्राकृतिक बाधाएं तथा ऐसी ही अन्य समस्याओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि यद्यपि संचार व्यवस्था के क्षेत्र में आनेवाले कई सालों तक संचार के ये परंपरागत साधन प्रशंसनीय भूमिका निभाते रहेंगे फिर भी आज के विकासशील युग में समुद्री जगत की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को इनके सहारे संतोषजनक ढंग से पूरा कर पाना कदापि संभव न होगा।

इलेक्ट्रॉनिकी के विकास ने ऊपर बतायी गयी समस्याओं को निपटाने में काफी मदद की है। इलेक्ट्रॉनिकी संचार के अंतर्गत दूरसंचार और डाटा संचार का समावेश है। दूरसंचार के अंतर्गत टेलीफोन, दूर टंकण, तार, रेडियो अथवा टेलीविजन जैसी सुविधाएं आती हैं जिनकी सहायता से कोई भी जानकारी सीधे अथवा कंप्यूटर के माध्यम से बड़ी आसानी से भेजी जा सकती है। विभिन्न कंप्यूटर सेवाओं के बीच डाटा अथवा सूचना के अंतरण को डाटा संचार कहा जाता है। कंप्यूटर द्वारा संदेश बड़ी तेजी से भेजे जा सकते हैं और डाटा अंतरण नेटवर्क के द्वारा दूरसंचार पर होने वाले व्यय में भी काफी कमी आती है। आज इलेक्ट्रॉनिकी ने इलेक्ट्रॉनिक डाक द्वारा भूमि तथा जलयान के बीच संदेशों के आदान-प्रदान में काफी सहायता पहुंचायी है। आज समुद्री व्यापार से जुड़ी अधिकांश कंपनियां इस सेवा का लाभ उठा रही हैं और काफी पैसा बचा रही हैं।

आजकल उपग्रह संचार व्यवस्था विकसित हो गयी है जिसके कारण जहां एक ओर अत्यंत उच्च आवृत्ति वाली पारंपरिक संचार व्यवस्था के सभी लाभ प्राप्त हो रहे हैं

वहीं दूसरी ओर दृश्य सीमाओं वाले पारंपरिक गतिरोधों से मुक्ति भी मिली है। यह एक ऐसा विशाल संक्रमण काल है जिसमें संचार संबंधी अनुरूप तकनीक से अंकीय इलेक्ट्रॉनिकी प्रौद्योगिकी की ओर परिवर्तन का दौर शुरु हुआ है जिसने संचार व्यवस्था के संपूर्ण परिदृश्य को ही बदल कर रख दिया है।

आजकल जलयान नियंत्रण के लिए एक अच्छी संचार व्यवस्था अनिवार्य तत्व है। फिलहाल समुद्री जगत की जटिलताएं दिनों दिन बढ़ती चली जा रही हैं और उन्हें निपटाने के लिए विशेषज्ञों की नितांत आवश्यकता प्रतीत हो रही है जबकि फिलहाल अपेक्षित स्तर के विशेषज्ञों की कमी महसूस की जा रही है अतः विशेषज्ञों की उपलब्धता और उनकी कमी के बीच जो अंतर है उसे दूर करने के लिए अब एक सुदृढ़ और उच्चस्तरीय संचार व्यवस्था बेहद आवश्यक है।

जहाजी माल को संभालने में इलेक्ट्रॉनिक तकनीक का प्रयोग :

कंप्यूटरीकरण के माध्यम से जहाजी माल को उतारने चढ़ाने का काम बड़ी ही कुशलतापूर्वक किया जा सकता है जिसके कारण ऐसे माल को संभालने संबंधी खतरे भी कम हुए हैं। इससे संबंधित महत्वपूर्ण बातें निम्नवत हैं :

(i) जहाजों को घाट पर लगाने और उन्हें घाट से बाहर ले जाने संबंधी विलंब को दूर करने में काफी सहायता मिली है।

(ii) इसके द्वारा जहाजी माल थैलों में भरा जाता है और उनका स्वचालित ढंग से वजन किया जाता है।

(iii) बंदरगाह के अंदर और बाहर जाने वाले ट्रकों की निकासी का काम इलेक्ट्रॉनिक तुला सेतु की सहायता से संपन्न किया जाता है।

(iv) चलते हुए रेलवे वैगनों का इलेक्ट्रॉनिकी पद्धति से वजन किया जाता है।

(v) कंप्यूटर की सहायता से जहाजी माल को जहाजों पर लादने तथा उनकी जल्दी निकासी के काम में तेजी आयी है। साथ ही मजदूरों को काम पर लगाने संबंधी आवश्यकता में भी कमी आयी है।

बंदरगाहों के जलयान यातायात प्रबंधन में इलेक्ट्रॉनिकी की भूमिका :

जलयान यातायात प्रबंधन, बंदरगाहों की कार्यकुशलता में सुधार का एक बहुत की प्रभावी साधन है। आज इलेक्ट्रॉनिकी प्रौद्योगिकी ने समुद्री जहाजों की यातायात संबंधी एक पद्धति विकसित की है जो इलेक्ट्रॉनिकी के क्षेत्र में अति उन्नत तथा विकासशील पद्धति है। वस्तुतः जलयान यातायात संचालन पद्धति एक जटिल पद्धति है जो बंदरगाह संसाधन से संबंधित सेवाओं, जैसे पायलट, टग, नौबंध नौका तथा ऐसी ही अन्य सेवाओं को संभालने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

जलयान यातायत प्रबंधन पद्धति के लाभ :

(i) बंदरगाह में नौवहन संबंधी कामकाज की लगातार निगरानी की जाती है जिसके कारण नौवहन गतिविधियों की आवृत्ति काफी तेज होती है।

(ii) जलयान यातायात पद्धति की सहायता से दिन-रात जहाजों के बंदरगाह पर आने और बाहर जाने के काम में बड़ी सहायता मिली है और साथ ही इस काम में काफी तेजी आयी है।

(iii) जहाजों के घाट पर आने जाने और साथ ही जहाजी माल के बंदरगाह में पहुंचने के समय की पहले से ही जानकारी होती है अतः पूरी कुशलता के साथ कार्य को सही ढंग से समय पर निपटाया जाता है।

(iv) बंदरगाह क्षेत्र की लगातार निगरानी की जाती है जिसके कारण पोर्ट क्षेत्र में गैर कानूनी ढंग से प्रवेश करने तथा बाहर जाने की गतिविधियों को रोका जाता है।

(v) पोर्ट के क्रिया कलाप में मौसम के परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं होता है।

(vi) जहाजों के आपस में टकराने से होनेवाली दुर्घटनाओं को रोकने में मदद मिली है।

(vii) प्रदूषण संबंधी कार्य को मॉनीटर करते हुए नियंत्रण रखता है तथा उससे बचाव करता है।

बंदरगाहों में इलेक्ट्रॉनिक प्रौद्योगिकी के प्रयोग के दौरान आनेवाली समस्याएं :

बंदरगाहों में इलेक्ट्रॉनिकी प्रौद्योगिकी के प्रयोग के समय निम्नलिखित समस्याएं सामने आती हैं :

(i) उपकरणों का बिगड़कर बंद हो जाना ।

(ii) आधारभूत जानकारी उपलब्ध कराने वाले बाह्यतंत्र में गड़बड़ी ।

(iii) उपकरणों की बिजली आपूर्ति में बाधा ।

(iv) जब कभी ऐन मौके पर इलेक्ट्रॉनिकी उपकरण बिगड़ जाते हैं तो उनका उपयोग करने वाले के सामने, खासकर समुद्र में होने पर विकट स्थिति उत्पन्न हो जाती है । उस समय उसका एकमात्र उपलब्ध सहारा पारंपरिक साधन होते हैं जिन्हें पर्याप्त नहीं कहा जा सकता ।

(v) इलेक्ट्रॉनिकी उपकरण द्वारा उपलब्ध करायी गयी वर्तमान स्थिति संबंधी जानकारी की जांच संभव नहीं है जिसके कारण उनका उपयोग करने वालों को निराशा का सामना करना पड़ता है ।

(vi) अधिकांश मामलों में हमारे बंदरगाह पारंपरिक पद्धतियों के साथ इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का मिला जुला प्रयोग करते हैं । दोनों पद्धतियों का एकसाथ प्रयोग करने से उनका उपयोग करने वाले व्यक्ति का कार्य घटने के बदले और अधिक बढ़ जाता है जो स्वाभाविक ही है ।

(vii) अभी तक लोग इलेक्ट्रॉनिकी साधनों पर भरोसा करने से हिचकिचाते हैं क्योंकि उन साधनों की विश्वसनीयता और उनसे प्राप्त जानकारी के प्रति पारंपरिक आशंका बनी हुई है ।

(viii) ऐसे बंदरगाह जो इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का आयात करते हैं उन्हें उस समय बेहद कठिनाई का सामना करना पड़ता है जब उनकी आवश्यकतानुसार समय पर उन्हें आवश्यक कलपुर्जे देश में ही उपलब्ध नहीं होते । ऐसी स्थिति में संबंधित उपकरण तब तक के लिए बंद पड़े रहते हैं जब तक उनके लिए आवश्यक कलपुर्जों का आयात नहीं हो जाता ।

(ix) कई बार ऐसा भी होता है कि इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों की मरम्मत का काम संभालने के लिए स्थानीय कुशल कारीगर तत्काल उपलब्ध नहीं होते जिसके कारण बंदरगाहों के सामने बेहद कठिनाई उत्पन्न हो जाती है और उनकी इलेक्ट्रॉनिक पद्धति तब तक निष्क्रिय बनी रहती है जब तक कि बाहर से कोई सुयोग्य कारीगर उपलब्ध नहीं होता ।

आज प्रतियोगिता का जमाना है जिस प्रकार भूमि परिवहन तथा हवाई परिवहन के क्षेत्र में प्रतियोगिता देखने को मिलती है उसी प्रकार समुद्री माल परिवहन के क्षेत्र में भी प्रतियोगिता बढ़ी है । आज समुद्री परिवहन की कुशलता को बढ़ाना एक अहम मुद्दा है जिसके आधुनिकीकरण की नितांत आवश्यकता है ।

आज बंदरगाहों के लिए यह आवश्यक हो गया है कि उनके सामने आने वाली चुनौतियों का सामना करने के लिए वे अपने संगठन तथा प्रबंधतंत्र को आधुनिक बनायें । इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए बंदरगाहों को अपनी कार्य कुशलता बढ़ानी होगी । इसके लिए यह भी जरूरी है कि वे अपने निर्णय लेने में शीघ्रता करें और कार्य निपटान संबंधी छोटी-छोटी कमियों को भी नजर-अंदाज न करें । इस संदर्भ में यह भी आवश्यक है कि वे अपने निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए पूरी निष्ठा से प्रयास करें ।

यदि हम इलेक्ट्रॉनिकी के प्रति समर्पित हों तो कुछ बंदरगाह कर्मियों के मन में अकारण उठने वाली दुविधा दूर हो सकती है । अभी भी कुछ बंदरगाहों को डर है कि इलेक्ट्रॉनिकी में गड़बड़ी की पूरी संभावना है अतः उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता । अब जरूरत इस बात की है कि ऐसी अनर्गल बातों पर विश्वास न किया जाये और एक ऐसा दृष्टिकोण विकसित किया जाये कि इलेक्ट्रॉनिक उपकरण बेहद उपयोगी हैं बशर्ते कि उनके परिचालन तथा रखरखाव का काम उचित स्तर के सुयोग्य अभियंता स्वयं संभालें ।

❐❐❐

विश्व की भावी संचार व्यवस्था के नये आयाम

काली शंकर,

801, टैगोर रोड हॉस्टल,
मिन्टो रोड, नयी दिल्ली 110 002

उपग्रह पर आधारित विश्व स्तर का दूर संचार नेटवर्क आनेवाली शताब्दी के लिए एक बहुत बड़ी आशा के साथ उभरा है। व्यावसायिक समुदाय लंबी दूरी के यात्रियों तथा दुर्गम स्थानों पर रहने वाले और सेल्युलर संचार क्षेत्र से बाहर के लोगों के बीच संचार स्थापित करने की क्षमता के अलावा उपग्रह संचार प्रणाली विकासशील देशों की मूल संचार समस्या को सुलझा सकती है।

विश्व स्तरीय अर्थ व्यवस्था और सूचना के इस युग में एक सुलभ और अच्छी तरह काम करने वाले दूर संचार तंत्र की बहुत अधिक आवश्यकता है। इसलिए भावी सूचनामय समाज के लिए एक मजबूत दूर संचार प्रणाली की आधारशिला उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार औद्योगिक युग के लिए परिवहन साधनों और रेल साधनों की थी। उसी के मुताबिक दूर संचार का ढांचा बनाना नीति निर्धारण करने वालों के लिए निःसंदेह ही एक चुनौती भरा कार्य है। अभियंताओं और तकनीकी विशेषज्ञों का भी दायित्व बढ़ जाता है। इसके लिए उच्चतम और आधुनिकतम तकनीकी और संसाधनों का संयुक्त प्रयोग ही शायद इस चुनौती का सीधा उत्तर होगा। इसके अलावा आज टेलीफोन एक उपभोक्ता सामग्री न बनकर एक आवश्यकता बन गया है और टेलीफोन, फैक्स इत्यादि के द्वारा सूचना के आदान प्रदान की आवश्यकता विश्व समुदाय के हर वर्ग को प्रतीत होने लगी है। आकांक्षाओं की पूर्ति करने वाले, प्रायोगिक दृष्टि से सामान्य व्यक्ति द्वारा वहन कर सकने योग्य दूर संचार के साधन विश्व समाज की आवश्यकता बनते जा रहे हैं। शायद संचार के आधुनिक साधन विश्व के लोगों के जीवन को आशा, खुशी और विश्व प्रेम से भर देंगे (चित्र-1)।

सामाजिक आर्थिक पहलू :

दूर संचार सेवाओं के द्वारा संपूर्ण ग्लोब में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों तथा विकसित और विकासशील भू खंडीय क्षेत्रों के बीच की दूरी को काफी हद तक कम किया जा सकता है। दूर संचार के साधन घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में आर्थिक मापदंड के नये नये आयाम खोलकर उनमें समाज के हर वर्ग को भाग लेने का सुंदर अवसर प्रदान करते हैं। औद्योगिक क्षेत्र में संचार साधनों की एक विशिष्ट और अहम् भूमिका है। इससे लोगों का जीवन स्तर सुधरता है। उपग्रह आधारित विश्व स्तरीय दूर संचार प्रणाली आने वाली शताब्दी में एक बहुत बडी आशा के रुप में उभरी है। इसकी क्षमताएं असीम एवं विश्वसनीय हैं। इस पर पृथ्वी की प्राकृतिक आपदाओं, संघटनाओं एवं मौसम का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इससे लाखों लोगों की जानमाल एवं करोड़ों की संपदा को क्षतिग्रस्त होने से बचाया जा सकता है।

व्यक्तिगत संचार सेवाएं :

यह प्रणाली निम्न प्रकार की संचार सेवाएं देने की क्षमता रखती है :-

क) श्रव्य सिगनल (आडियो सिगनल) : 4.8 कि.बिट प्रति सेकंड की दर से कोडित की हुई सिगनल सेवा।

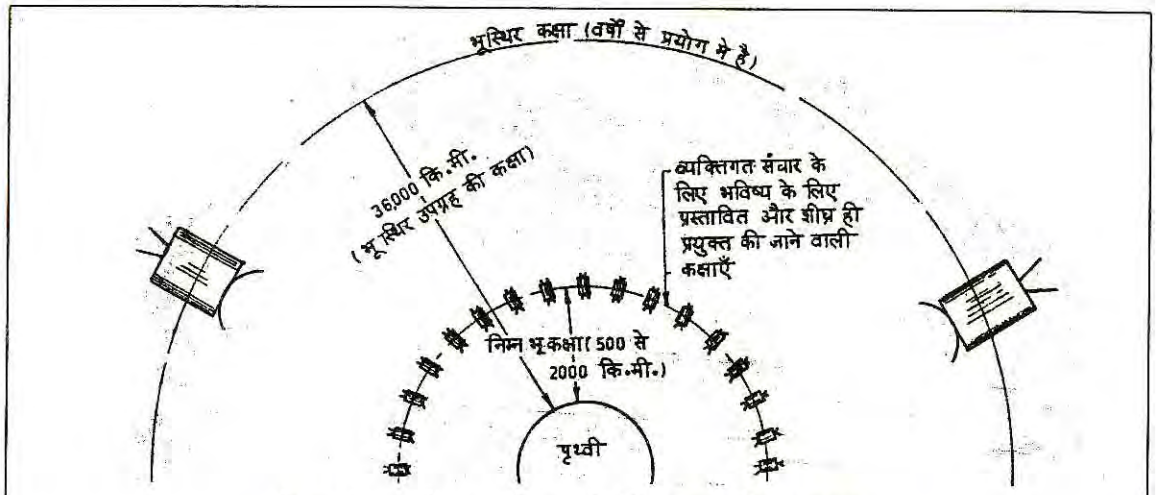

चित्र-1 : व्यक्तिगत संचार के लिए प्रस्तावित कक्षाएं

ख) डाटा सिगनल सेवा : 2.4 कि.बिट प्रति सेकंड
ग) श्रव्य और डाटा सेवाएं एक साथ
घ) फैक्स सेवा (2.4 कि.बिट प्रति सेकंड)
च) पेजिंग सेवा
द) संक्षिप्त संदेश सेवा
ज) आपत्कालीन कॉल सेवा

इनके अलावा कुछ अन्य प्रकार की सेवाएं भी हो सकती हैं :-

क) कॉल का स्थानांतरण
ख) कॉल का होल्ड करना
ग) कॉल प्रतीक्षा में

व्यक्तिगत संचार में उपग्रहों की क्षमता :

जब हम व्यक्तिगत संचार की बात करते हैं तो अनेक प्रकार की संचार सेवाएं दिमाग में आती हैं जैसे पेजिंग, इलेक्ट्रॉनिक मेल, हैन्ड हेल्ड या चलते-फिरते संचार कर सकने की क्षमता वाले टेलीफोन (मोबाइल कम्यूनिकेशन)। इस प्रकार की दक्ष सेवाएं छोटे उपग्रह तंत्र के माध्यम से बहुत अच्छी प्रकार से संपन्न की जा सकती हैं। संचार सेवा के अलावा यह प्रणाली किसी स्थान की स्थिति अर्थात वहां का अक्षांश, देशांतर तथा उस स्थान की समुद्र तल से ऊंचाई आदि ज्ञात करने में सक्षम है। यहां पर इस बात का जिक्र नितांत आवश्यक है कि व्यावसायिक दृष्टि से गतिशील उपग्रह सेवाएं काफी आकर्षक एवं महत्वपूर्ण हैं। विश्व में अप्रैल 1990 तक इस पर आधारित सेल्युलर फोनों की संख्या 78 लाख थी जो मई 1992 तक 150 लाख हो गयी। आज विश्व में इनकी संख्या लगभग 250 लाख है। उनमें 120 लाख अमरीका में तथा लगभग 25-35% यूरोप में हैं।

गतिशील संचार सेवा का प्रयोग करने वाले उपभोक्ताओं के पास निम्नलिखित उपकरण और व्यवस्था होनी चाहिए :

क) सस्ते दामों वाले उपभोक्ता टर्मिनल,
ख) सस्ते दर (प्रतिमिनट) पर उपग्रह और भूकेंद्र तंत्र की व्यवस्था,
ग) सार्वजनिक टेलीफोन को नेटवर्क से जोड़ने की व्यवस्था,
घ) उपभोक्ताओं के बीच में आपस में संचार की व्यवस्था

2000 तक विश्व में इनको उपयोग में लाने वाले उपभोक्ताओं की संख्या 30 से 50 लाख तथा 2008 तक 120 से 150 लाख तक हो जाने ही उम्मीद है। निःसंदेह यह कई सौ लाख डालर की मोटोराला जैसी बड़ी कंपनी की विशाल निम्न कक्षीय उपग्रह संचार सेवा

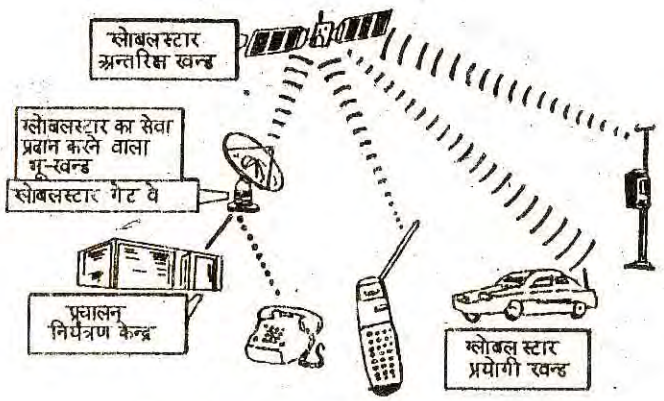

चित्र-2 : ग्लोबल स्टार तंत्र

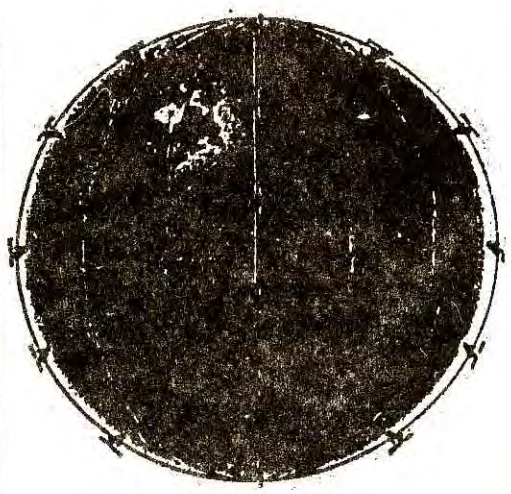

चित्र-3 : 6 प्लेनों में पृथ्वी का चक्कर लगाते हुए 'इरीडियम' तंत्र के 66 उपग्रह

इरीडियम परियोजना है। जिसमें उपग्रह पृथ्वी से काफी नजदीक (500 से 2000 किमी.) स्थापित किये जाते हैं जबकि सामान्य उपग्रह संचार प्रणाली में ये पृथ्वी से 36000 किमी. की दूरी पर स्थापित किये जाते हैं (चित्र-2)। संचार की बढ़ती आवश्यकता को देखते हुए निम्नकक्षीय उपग्रह संचार प्रणाली भविष्य के लिए काफी महत्वपूर्ण है।

निम्न कक्षीय उपग्रह संचार प्रणाली में कई तंत्र भविष्य में आने वाले हैं। इनमें इरीडियम परियोजना एक ऐसा तंत्र है जिससे यह उम्मीद है कि यह विश्व का 1% सेल्युलर मार्केट तथा 0.5% पेजिंग संचार मार्केट पर अपना आधिपत्य रखेगा। इस तरह के अन्य तंत्र हैं ग्लोबल स्टार, ओडीसी, एरीज, इलिप्सो, गोनेट्स, ल्योसैट इत्यादि। इस संदर्भ में व्यक्तिगत संचार की दृष्टि से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पानी के जहाजों को संचार सुविधा प्रदान करने वाली संस्था 'इनमैरसैट' की नयी परियोजना 'प्रोजेक्ट-21' का जिक्र भी आवश्यक है। इसी प्रकार एक अन्य संचार कंपनी "कालिंग कम्युनिकेशन कॉर्पोरेशन" एक अन्य निम्न कक्षीय संचार उपग्रह परियोजना पर कार्य कर रही है जिसमें 840 उपग्रहों का प्रयोग किया जायेगा तथा प्रत्येक उपग्रह पृथ्वी से लगभग 700 किमी. की दूरी पर स्थापित किया जायेगा। इसके द्वारा फिक्स्ड और गतिशील श्रव्य और डाटा सेवा प्रदान की जायेगी। यह संचार सेवा विशषतौर पर उन देशों के लिए होगी जिनके पास समुचित संचार नेटवर्क नहीं हैं। इसके लक्ष्य में विश्व के लगभग वे 400 लाख लोग होंगे जो टेलीफोन पाने की प्रतीक्षा सूची में हैं। इस प्रस्तावित तंत्र की अनेक

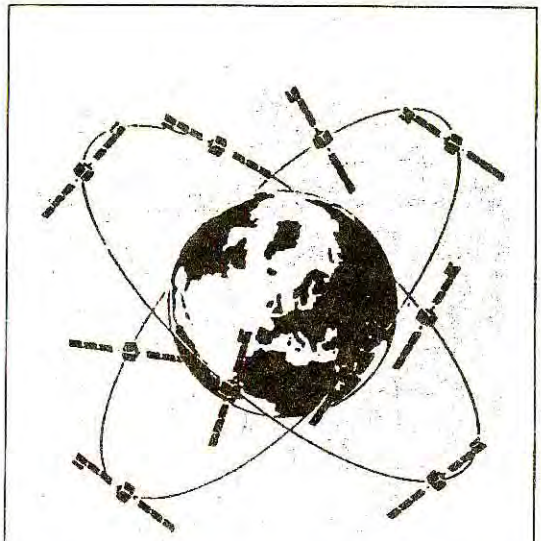

चित्र-4 : व्यक्तिगत संचार के लिए एक अन्य भावी तंत्र आई. सी. ओ. के दस उपग्रह

औपचारिकताएं अभी पूरी होनी बाकी हैं (चित्र-3,4)।

लघु उपग्रह तकनीक :

आर्थर सी. क्लार्क की प्रसिद्ध संकल्पना के आधार पर संचार के लिए उपग्रहों का प्रयोग प्रारंभ हुआ। बाद में यह भी ज्ञात हुआ कि तीन उपग्रह पृथ्वी की समकालिक कक्षा में (पृथ्वी से 36000 किमी. की दूरी पर) स्थापित करने से संपूर्ण पृथ्वी में संचार व्यवस्था स्थापित की जा सकती है। इसीलिए आज तक सारे संचार उपग्रह पृथ्वी से 36000 किमी. की दूरी पर स्थापित किये जाते हैं। ये महंगे, जटिल तथा भारी होते हैं तथा उनके लिए प्रयुक्त भू-केंद्र (जिनके द्वारा सिगनल का प्रेषण तथा अभिग्रहण किया जाता है) भी महंगे होते हैं। लेकिन अगर यही उपग्रह पृथ्वी के नजदीक स्थापित किये जायें तो उपग्रह और प्रयुक्त टर्मिनल सस्ते तथा बहुत छोटे आकार (जैसे पॉकेट साइज) के होंगे। लेकिन जैसे-जैसे पृथ्वी से उपग्रहों की दूरी कम होगी, वैसे-वैसे संपूर्ण पृथ्वी में संचार व्यवस्था स्थापित करने के लिए बहुत सारे उपग्रहों को कक्षा में स्थापित करने की आवश्यकता पड़ेगी। परंतु उनका भार और जटिलपन काफी कम हो जायेगा।

लघु उपग्रहों की श्रेणी में 50 से 160 किग्रा. भार वाले उपग्रहों को 'माइक्रो' उपग्रहों का नाम दिया गया है। वे उपग्रह जिनका भार 1000 किग्रा से 1500 किग्रा. तक होता है "मिनी" उपग्रह कहलाते हैं। उपग्रहों के भार में प्रस्तावित और कुछ परियोजना-बद्ध परियोजनाओं और तंत्रों में कमी किये जाने का कारण यह है कि अनेक बहु उद्देश्यीय मिशनों के उद्देश्यों का पूरा करने के लिए एक विशाल उपग्रह की अपेक्षा कम भार वाले अनेक उपग्रहों का प्रयोग ज्यादा लाभकारी होगा। इससे उपग्रहों की प्रमोचन असफलता भी कम रहेगी क्योंकि अगर एक विशाल बहु उद्देश्यीय उपग्रह असफल होता है तो पूरा मिशन ही असफल हो जाता है जबकि अगर एक लघु उपग्रह असफल होगा तो मिशन आंशिक रूप से ही असफल होगा।

गैर समकालिक संचार उपग्रहों की चार श्रेणियां हैं; मध्यवर्ती वृत्तीय कक्षा, निम्न कक्षा, अत्यधिक दीर्घवृतीय कक्षा और अत्यधिक झुकावदार कक्षा वाले उपग्रह।

अंतरिक्ष कक्षाओं से संबंधित कुछ पहलू :

समकालिक कक्षा में स्थित उपग्रह पृथ्वी के सापेक्ष में स्थिर दिखाई देते हैं इसलिए 120^0 के अंतर में स्थापित कर सकते हैं। पृथ्वी के एक चक्कर में 24 घंटे का समय समकालिक कक्षा के उपग्रहों में लगता है। जबकि निम्नकक्षीय उपग्रहों के मामलों में यह आवर्तकाल कुछ मिनटों (जैसे 100 मिनट) का होता है। अतः ये उपग्रह पृथ्वी के एक बिंदु से कुछ मिनटों के लिए ही दृष्टिगोचर होते हैं। संचार निष्पादन के लिए यह अति आवश्यक है कि निम्नकक्षीय उपग्रह पुंज के सारे उपग्रह कार्यशील हों। इस प्रकार यद्यपि निम्न कक्षीय उपग्रह अंतरिक्ष खंड की जटिलता को बढ़ाते हैं लेकिन समकालिक कक्षा के उपग्रहों की अपेक्षा इसमें 15 से 20 डेसिबल सिगनल ह्रास कम हो जाता है। यह तथ्य उपभोक्ता टर्मिनल की कीमत तथा उसके आकार और भार को अत्यधिक कम कर देता है। इसलिए यह आवश्यक है कि कक्षा का चयन इस प्रकार से किया जाय जिससे वांछित परिणाम मिल सके।

कक्षा निर्धारण में एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू है सिगनल बाधा या इन्टरफरेन्स । यह समस्या अत्यधिक दीर्घवृत्तीय और भू-समकालिक कक्षा के उपग्रह के उसी आवृत्ति बैंड का प्रयोग करने पर और जटिल हो जाती है। आवृत्ति निर्धारण के समय इसका विशेष ध्यान रखना होता है ।

स्पेक्ट्रमी और नेटवर्क पहलू :

भावी संचार नेटवर्क को उच्च स्तरीय स्वरूप होने के लिए गैर समकालिक कक्षा के उपग्रहों से काफी आशाएं हैं । इसके अलावा उच्च स्तर के सिगनल को पाने के लिए प्रेषण और अभिग्रहण दिशाओं में काफी अधिक बैंड चौड़ाई की आवश्यकता बढ़ती जायेगी । इसके लिए 20,000 से 30,000 मैगाहर्ज जिसे "का बैंड" कहते हैं की आवश्यकता होती है। दूर संचार सेवाओं के बहुमुखी विकास के लिए अंतरिक्ष तंत्र को "मेश नेटवर्क" की भांति जिसमें प्रत्येक उपग्रह स्विच नोड की भांति कार्य करेगा तथा इस पास वाले उपग्रह नोड से जोड़ने की आवश्यकता भी पड़ेगी । इस तरह की आवश्यकता पूर्ति के लिए अंत: उपग्रह लिंकों (इन्टरसैटेलाइट लिंक), उपग्रह के अंदर सिगनल प्रोसेसिंग का प्रबंध और उपग्रह के अंदर सिगनल स्विचिंग की आवश्यकता पड़ेगी । यद्यपि इस प्रकार की आवश्यकताएं उपग्रहों की संरचना को जटिल बनायेंगी और कीमत बढ़ायेंगी लेकिन यह जटिलता संचार सेवा के बहुमुखी विकास तथा तंत्र प्रबंधन के लिए बहुत अधिक सहायक बनेगी । इसका आर्थिक दृष्टि से मुख्य लाभ तंत्र के प्रचालन खर्चे में अत्यधिक कमी के रूप में होगा । उपग्रह के अंदर स्विचिंग की सुविधा होने से उपग्रह हजारों 'वी-सैट' जैसे लघु टर्मिनलों से संचार संपर्क कर सकेगा ।

विश्व के विकासशील और सुदूर क्षेत्रों में उच्च कोटि की दूर संचार सेवाओं की नितांत आवश्यकता है । पिछले तीस सालों में इस तरह की सेवाओं की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है जिसके कारण विश्व का वर्तमान तथा पारंपारिक संचार नेटवर्क अभी तक इन क्षेत्रों तक नहीं पहुंच पाया है । इसलिए इसका सीधा समाधान है बहु उद्देश्यीय विश्वस्तर का उपग्रह नेटवर्क ।

संचार तकनीक में हुए विकासों ने विश्व स्तर के संचार नेटवर्कों को प्रगतिशील स्वरूपों के विकास की दिशा में नये-नये आयाम जोड़े हैं । कम भार वाले उपग्रहों की तकनीक ने विश्व स्तर की संचार व्यवस्था (जो गैर समकालिक उपग्रह तकनीक पर आधारित होगी) को काफी सस्ता बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास किया है ताकि वे घनी बस्ती वाले अथवा दूर दूर फैले हुए क्षेत्रों की संचार व्यवस्था को एक नया मोड़ दे सकें । यहां यह भी ध्यान देने की बात है कि संचार के इन विशाल नेटवर्कों का प्रबंधन तथा उनके उपकरणों की उपलब्धता और प्रचालन किसी एक संस्था या देश के द्वारा नहीं संभव हो पायेगा । इसे मिल-जुलकर ही करना संभव होगा तथा आर्थिक दृष्टि से भी यह अच्छा होगा ।

❐❐❐

अपशिष्ट पदार्थ प्रौद्योगिकी

चंद्र बल्लभ नौटियाल, वैज्ञानिक,
भारतीय पैट्रोलियम संस्थान,
पो. ऑ. : आई. आई. पी. मोहकमपुर,
देहरादून 248 005.

वातावरण मिल बांट कर उपयोग में लाने वाला एक सीमित साधन है और इसे सबसे बड़ा खतरा सार्वजनिक ऊष्मन से है। ग्रीन हाउस प्रभाव में सबसे व्यापक हाथ कार्बन डाईऑक्साइड का है। अगर प्रदूषण सीमा लांघ गया तो इसका प्रभाव प्रलयंकारी हो सकता है। अब या तो हमें प्रदूषण का मूल्य चुकाना पड़ेगा अथवा कुछ वैकल्पिक ईंधन स्रोत ढूंढने होंगे जिससे ग्रीन हाउस प्रभाव नियंत्रण में रखा जाये। प्रस्तुत लेख में कार्बनिक एवं और जैव अवशिष्ट को ईंधन के रूप में प्रयोग हेतु प्रौद्योगिकी का विवरण दिया गया है।

सभी प्रकार के कार्बनिक पदार्थों या जैवमात्रा को किसी न किसी ईंधन के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। ये मुख्यतः कार्बोहाईड्रेट यौगिकों से बने होते हैं जो वानस्पतिक अथवा प्राणी रूप में होते हैं। जैव मात्रा का उत्पादन फसलों, फसलों के अवशिष्ट, खाद्य पदार्थों, प्राकृतिक तंतुओं एवं नगर पालिकाओं एवं औद्योगिक संस्थानों द्वारा विसर्जित कचरे द्वारा होता है।

कार्बनिक पदार्थों के जैव रासायनिक वियोजन का स्रोतः

व्यापक प्रकार के सैप्रोफाइटिक जीवाणु जल-अपघटन तथा सम्मिश्र पदार्थ को निम्न आण्विक भार के पदार्थ के रूप में परिवर्तित करते हैं। ये पदार्थ लघु वसायुक्त अम्ल जैसे एसिटिक, प्रोपियोनिक, ब्यूटेरिक आदि अत्यंत महत्वपूर्ण घटकों का निर्माण करते हैं।

इन लघु आण्विक भार वाले अम्लों का संचयन अवायवीय पाचन प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है जिससे उसके उभय प्रतिरोधन में कमी आती है तथा pH मान गिर जाता है।

अवायवीय पाचन इकाइयाँ स्थिर स्थिति में रहकर कार्बनिक पदार्थों के विनाश को दो प्रकार के जीवाणुओं में संचालित करती हैं; (i) सैप्रोफाइटिक जीवाणु के निम्नीकरण को अम्ल अवस्था तक ले जाता है तथा (ii) मीथेन का निर्माण करने वाले जीवाणु पदार्थ को पूरी तरह मीथेन तथा कार्बनडाइऑक्साइड में बदल देते हैं। जब मीथेन का निर्माण करने वाले जीवाणुओं की संख्या अधिक होती है तथा वायुमंडलीय स्थिति अनुकूल होती है, वे निर्मित होते ही शीघ्रता से प्रोफाइटिक जीवाणुओं द्वारा तैयार किये गये अंतिम उत्पाद का उपयोग करते हैं।

यौगिकों का अवायवीय वियोजन तथा कुछ द्रवों का मल विशेषकर 1500 मिग्रा. प्रति लीटर बी. ओ. डी. मूल्यों के अनुरूप मितव्ययी उपचार का तरीका बन जाता है। कार्बनिक पदार्थों के सम्मिलित होने पर मीथेन का निर्माण करने वाले जीवाणु उन पर आक्रमण करते हैं।

अवायवीय प्रक्रम अपनी मितव्ययता के कारण ही प्रचलित हैं। इस प्रक्रिया से उत्पन्न गैस में साधारणतया 33 से 38% कार्बन डाईऑक्साइड और 55 से 65% मीथेन पायी जाती है। इसमें अल्प मात्रा में हाइड्रोजन तथा नाइट्रोजन, हाइड्रोजन सल्फाइड अत्यंत कम मात्रा में पायी जाती है। इसका ऊष्मा मूल्य 600 बी. टी. यू. / घनफुट होता है। इन पदार्थों के सामान्य द्रवों से कार्बनडाइऑक्साइड व मीथेन प्राप्त होती है।

वुशवेल तथा बोरोफ की अवधारणा पर आधारित मीथेन किण्वन से तीन श्रेणी कार्बनिक पदार्थ बनते हैं जो तालिका-1 में दिये गये हैं।

तालिका - 1

कार्बनिक पदार्थ	CO_2 (%)	CH_4 (%)
कार्बोहाइड्रेट	50	50
वसा अम्ल (i) लघु आण्विकभार	38	62
(ii) उच्च आण्विक भार	28	72
प्रोटीन	24 / 31	76 / 69

नूप का बीटा आक्सीकरण क्या है ?

वसा, तेल और मोम सभी इस्टर हैं। वसा और मोम ट्राइहाड्रोक्सी अल्कोहॉल और ग्लीसोरोल की श्रेणी में आते हैं। जबकि सभी मोम लंबी कड़ी मोनो हाइड्रोक्सी अल्कोहॉल के इस्टर हैं। ये सब जीव तथा कीड़ों का भोजन हैं और जल अपघटन से वसा अम्ल और अल्कोहॉल में परिवर्तित हो जाते हैं।

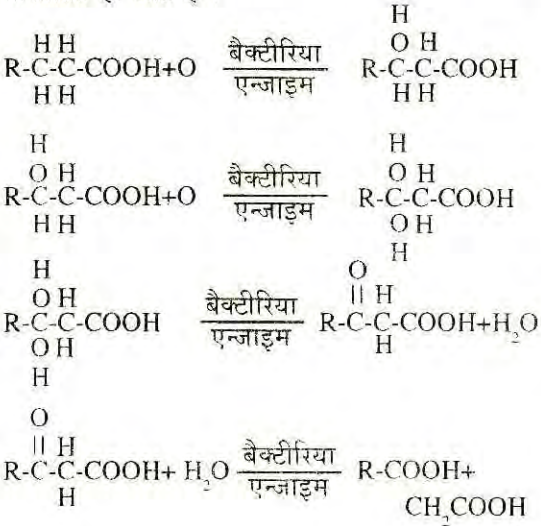

नूप के बीटा उपचयन सिद्धांत के अनुसार जीव रासायनिक वियोजन निम्नीकरण दीर्घ-कड़ी-वसा अम्ल का कार्य ऐसेटिक अम्लों की दो कार्बन परमाणु इकाइयों का निर्माण करना होता है। साथ ही बिदलन इससे कई गुणा होता है।

केप्लोवस्की का मानना है कि ऐसिटिक अम्ल तथा ब्यूटारिक अम्ल, प्रधान वाष्पशील अम्ल हैं। पाचन के दौरान वाहित मल में प्रोपियोनिक अम्ल कम मात्रा में होता है। औद्योगिक मल सहित अनुवर्ती अध्ययनों में उनका मानना था कि प्रोपियोनिक और वेलेरिक अम्ल अत्यधिक मात्रा में इष्ट तथा मांस पैकिंग मल के पाचन के कुछ स्तरों में पाया जाता है, जबकि कागज तथा गत्ते की रद्दी में नहीं होता है।

अधिक ऊष्मा की मात्रा वाले जैविक पदार्थों की संरचना प्रायः बैंजीन क्रम पर आधारित होती है। जैविक पदार्थों का वाष्पशील अम्ल निर्धारण जैव रासायनिक संघटन की अवायवीय पाचन प्रक्रिया से होता है। स्प्रोफाइटिक जीवाणु जल अपघटन से निम्नीकरण करके लघु आण्विक संदुल तैयार करते हुए वसायुक्त अम्ल, मुख्य रुप से ऐसेटिक अम्ल, प्रोपियोनिक और ब्यूटेरिक अम्ल तैयार करते हैं। इन लघु आण्विक भार अम्ल के संचयन से अवायवीय पाचन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पर्यावरण को यथासंभव संकीर्ण स्तर तक तथा अवायवीय स्थिति में रखना चाहिए।

महानगरों में प्राप्त होने वाला मल अत्यधिक जैव गैस प्रदान करता है (तालिका-2)।

तालिका - 2 : महानगरों में जैविक गैस से संबंधित कुछ आंकड़े

विवरण इकाइयाँ	दिल्ली	मुंबई	कलकत्ता	मद्रास
नागरिक मल (टन/दिन)	4000	5000	5000	3000
जैविक गैस (सीवर) क्षमता (1000 घमी. / दिन)	581	720	720	475
जैविक गैस (ठोस मल) क्षमता (1000 घमी. / दिन)	840	800	800	540
परिवहन ईंधन (किली./दिन)	300	380	380	250
परिवहन क्षमता (प्रतिशत)	10	22	22	30

तालिका - 3 : विभिन्न गैसों से प्राप्त ऊष्मा की मात्रा

ईंधन गैस	ऊष्मा (बीटीयू/घनफुट)
कोयला (टाउन) गैस	450 - 500
बायो गैस	450 - 700
मीथेन	896 - 1069
प्राकृतिक गैस (मीथेन और प्रोपेन)	1050 - 2200
प्रोपेन	2200 - 2600
ब्यूटेन	2900 - 3400
एसिटिलीन	1500 -1600

तालिका - 3 में बायो गैस तथा अन्य गैसों से प्राप्त ऊष्मा की मात्रा दी गयी है। बायोगैस का मुख्य प्रयोग अभी तक खाना बनाने, प्रकाश एवं खाद तक ही सीमित रहा है। यद्यपि भारतवर्ष में डीज़ल और पेट्रोल के इंजनों एवं इनके निर्माताओं की कोई कमी नहीं है। परंतु फिर भी बायोगैस का उपयोग अभी तक इंजनों में नहीं किया गया है।

ब्रिटेन में एक सफल द्वि-ईंधन इंजन को पेटेंट किया गया है जो बिना अनुरक्षण के 24,000 घंटों तक लगातार चलता रहा। इसके उपयोग से पेड़ों की कटान काफी हद तक रुक सकती है जिससे पर्यावरण संरक्षण होगा। हमारे सामने सबसे बड़ा प्रश्न है कि व्यवहारिक क्षेत्र में स्वच्छ वातावरण बनाने के लिए हम किस तरह से वर्तमान इंजन में बायोगैस का उपयोग कर सकते हैं। विश्व ऊर्जा सम्मेलन में भी विकासशील देशों जैसे भारत, टर्की, नेपाल द्वारा 2020 तक बायोगैस के प्रयोग की संभावना व्यक्त की गयी है जिससे जब तब तक सूर्य ऊर्जा का स्रोत रहेगा तब तक पृथ्वी पर पेड़-पौधों के द्वारा कार्बनडाईऑक्साइड और ऑक्सीजन का संतुलन बना रहेगा इसलिए बायोगैस भी न खत्म होने वाली ऊर्जा है। उदाहरण के लिए पेट्रोल से 19,000 BTU प्रति पाउंड, तथा मीथेन से 22,000 BTU प्रति पाउंड ऊर्जा मिलती है। यदि द्रव के रूप में तुलना करें तो यह ऊर्जा क्रमश 9,000 BTU प्रति गैलन तथा 1,36,000 BTU प्रति गैलन होती है।

गैर जीवाश्मीय (नॉन-फॉसिल) - ईंधन स्रोत से प्राप्त शक्ति का विवरण तालिका - 4 में दिया गया है।

तालिका - 4 : गैर जीवाश्मीय स्रोतों से प्राप्त शक्ति

स्रोत	सतत आधार पर उपलब्ध शक्ति (मैगावाट)
प्रकाश संश्लेषण	10^7
समुद्री ऊष्मा	10^7
उपलब्ध पवन शक्ति	10^6
जल शक्ति	10^5
कुल पवन शक्ति	10^{14}
ज्वारीय शक्ति	13×10^3
भूतापीय शक्ति	60×10^3

उत्पादन में गति लाने के लिए बायो गैस उत्पादन पर विभिन्न धात्वक उत्प्रेरकों के प्रभाव का अध्ययन किया गया। इसके लिए गाय के गोबर से प्राप्त बायो गैस उत्पादन चुना गया। 37^0 सें पर किये शोध के परिणाम स्वरूप यह पाया गया कि गाय के गोबर से प्राप्त बायोगैस उत्पादन के लिए उपयुक्त उत्प्रेरक निम्न प्रकार से हैं :

1) मैगनीशियम
2) एल्यूमीनियम (अधिक तीव्र दर से बायोगैस के उत्पादन हेतु।)
3) लौह (Fe)

बायोगैस प्रौद्योगिकी के ऊपर और अधिक शोध की आवश्यकता है तभी यह तकनीक भविष्य में अपना एक विशिष्ट स्थान बनाने में सफल हो पायेगी।

❐❐❐

पेट्रोलियम उत्पादन में मिश्रधातुओं की उपयोगिता

डॉ. अतुल कुमार सामंत,
उप अधीक्षण रसायनज्ञ,
अभियांत्रिक एवं समुद्र प्रौद्योगिक संस्थान,
तेल एवं प्राकृतिक गैस कॉरपोरेशन लिमिटेड,
पनवेल - 410 221.

खनिज तेल उत्पादन के लिए प्रयुक्त डाउनहोल ट्यूबलर्स के तीव्र संक्षारण के लिए गहरे तैलाशय मे उपस्थित हाइड्रोजन सल्फाइड और कार्बन डाइऑक्साइड गैस उत्तरदायी है। संक्षारण धातु की मात्रा में हो रहे ह्रास को संक्षारण रसायनिक संदमकों (इन्हीबिटरों) के उचित प्रयोग द्वारा नियंत्रित किया जाता है। उच्च तापमान, दबाव और उत्पादित खनिज तेल एवं गैस की तीव्र गति के कारण आजकल संक्षारण प्रतिरोधक मिश्रधातुओं के ट्यूबलर्स का उपयोग बढ़ रहा है। प्रस्तुत लेख में विभिन्न प्रकार की मिश्रधातुओं की चर्चा की गयी है।

पिछले कुछ वर्षों से खनिज तेल एवं गैस की मांग बढ़ती जा रही है। बढ़ता हुआ औद्योगीकीकरण इसका मुख्य कारण है। वास्तविकता यह है कि पेट्रोलियम पदार्थों की मांग तथा खपत के मुकाबले उनका उत्पादन कम हो गया है। 1996-97 में यह मांग बढ़कर करीब 81.2 मिलियन टन हो जाने की संभावना है। इस मांग को पूरा करने के लिए गहरे तैलाशयों में से खनिज तेल एवं गैस प्राप्त करने के प्रयास किये जा रहे हैं।

गहरे, गर्म तथा उच्च दाब युक्त तैलाशय से खनिज तेल एवं गैस उत्पादन अत्यंत जटिल प्रक्रिया है। हाइड्रोजन सल्फाइड, कार्बन डाइऑक्साइड और क्लोराइड आयन युक्त इन तैलाशयों में वेधन तथा उत्पादन असुरक्षित तथा महंगा साबित होता है। उच्च दबाव के कारण विफल विस्फोट (ब्लो आउट) की संभावना हर समय बनी रहती है। पेट्रोलियम के साथ उत्पादित जल की उपस्थिति में हाइड्रोजन सल्फाइड और कार्बन डाईऑक्साइड गैसें उत्पादन में प्रयुक्त साधारण स्टील ट्यूबलर्स तथा अन्य यंत्रों को संक्षारित कर देती है। अतः गहरे कूपों से पेट्रोलियम उत्पादन में साधारण धातुओं और मिश्रधातुओं का प्रयोग आर्थिक और सुरक्षा के दृष्टिकोण से अधिक उपयोगी नहीं पाया गया है। इन समस्याओं को ध्यान में रख, अब संक्षारण प्रतिरोधक उच्च मिश्रधातुओं से निर्मित ट्यूबलर्स (केसिंग, ट्यूबिंग आदि) तथा यंत्रो का उपयोग कर गहरे कूपों से खनिज तेल एवं गैस निकालने के लिए प्रयास किये जा रहे हैं। चित्र-1 में कूप का रेखा चित्र दर्शाया गया है।

मिश्रधातुओं के चयन का आधार :

पेट्रोलियम उत्पादन एवं परिवहन से संबंधित विभिन्न चरणों में उपयुक्त यंत्र, ट्यूबलर्स, पाइपलाइन, सेपेरेटर और भंडारण टैंक इत्यादि के निर्माण मे विभिन्न प्रकार की धातुओं और मिश्रधातुओं का प्रयोग होता है। उनका चयन वातावरण, (जहां पर इन उपकरणों का उपयोग होना है) की तीव्रता, संक्षारकता एवं आर्थिक दृष्टिकोण को ध्यान में रख कर किया जाता है।

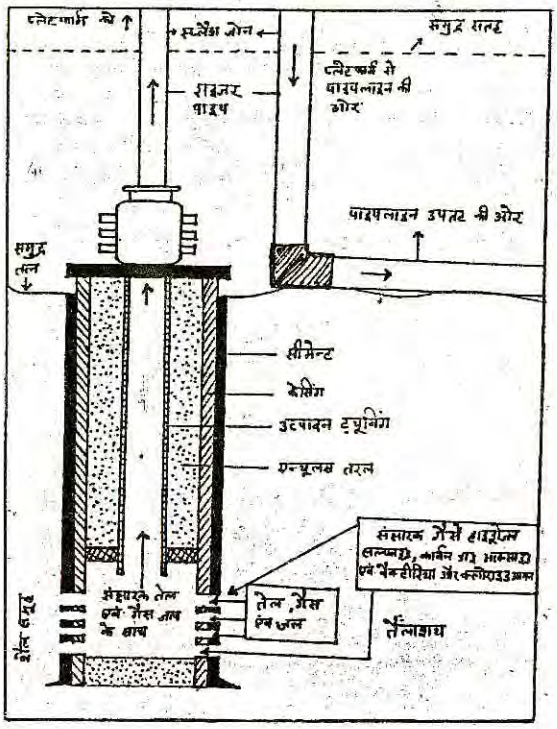

चित्र-1 : अपतट में कूप द्वारा खनिज तेल एवं गैस उत्पादन का रेखाचित्र

पेट्रोलियम उत्पादन एवं परिवहन के क्षेत्रों में धातु निर्मित ट्यूबलर्स, पाइप इत्यादि में सामान्य संक्षारण की तुलना में स्थानीय (लोकेलाइज्ड) संक्षारण की संभावना अधिक होती है । पिंटिंग, क्रिवाइस संक्षारण, स्ट्रेस संक्षारण, क्रैकिंग इत्यादि मुख्य स्थानीय संक्षारण हैं ।

पिंटिंग तथा क्रिवाइस संक्षारण के कारण ट्यूबलर्स तथा खनिज तेल एवं गैस ले जाने वाले धातु के पाइपों में धातु की मात्रा में ह्रास के कारण गड्ढा (पिट) बन जाता है जो अंततः छिद्र में परिवर्तित हो जाता है । धातुओं में क्रोमियम तथा मोलिब्डनम की मात्रा बढ़ाने से पिंटिंग तथा क्रिवाइस संक्षारण के विरुद्ध प्रतिरोधक क्षमता का बढ़ाव होता है । पिंटिंग प्रतिरोधकता के आधार पर मिश्रधातुओं को श्रेणीबद्ध करने के लिए एक सूत्र का प्रयोग किया गया है । इस सूत्र के अनुसार, पिंटिंग रेजिसटेंट इक्यूवलेंट नंबर (पी. आर. ई. एन.) = % क्रोमियम + 3.3% मोलिब्डनम + 16 % नाइट्रोजन ।

पी. आर. ई. संख्या जितनी अधिक होगी, उतनी ही मिश्रधातु में संक्षारण के प्रति प्रतिरोधकता अधिक होगी।

पेट्रोलियम उत्पादन में ट्यूबिंग स्ट्रिंग पर उच्च तनाव रहता है । इस तनाव एवं संक्षारण युक्त वातावरण की उपस्थिति के कारण ट्यूबिंग में दरार (क्रैक) पड़ जाती है और अंततः यह टूट कर कूप में गिर सकती है । ट्यूबिंग के टुकड़े को कूप से बाहर निकालना अत्यंत महंगा साबित होता है और प्रायः टुकड़ा न निकाल पाने की स्थिति में कूप को बंद करना पड़ जाता है जिसके कारण अत्यधिक आर्थिक क्षति होती है ।

हाइड्रोजन सल्फाइड वाले गहरे कूपों में ट्यूबलर्स में दरार (क्रैक) पड़ने के लिए हाइड्रोजन इम्ब्रिटलमेन्ट, सल्फाइड तथा क्लोराइड स्ट्रेस क्रैकिंग मुख्यतः उत्तरदायी हैं । इन कूपों में हाइड्रोजन सल्फाइड या अम्लीकरण क्रिया के कारण नवजात हाइड्रोजन उत्पन्न होती है जो विसरण के द्वारा धातु ट्यूबलर्स में प्रवेश कर तन्यता (डक्टिलिटी) में ह्रास का कारण बनती है । इस कारण ट्यूबलर्स इम्ब्रिटल होकर चटक जाते हैं या उनमें दरार पड़ जाती है । इस क्रिया को हाइड्रोजन इम्ब्रिटलमेन्ट कहते हैं । इसी प्रकार हाइड्रोजन सल्फाइड की उपस्थिति में अगर ट्यूबलर्स या टयूबिंग स्ट्रिंग पर अत्यधिक तनाव है तो इस स्थिति में होने वाली चटक, दरार (क्रैकिंग) को सल्फाइड स्ट्रेस संक्षारण क्रैकिंग (एस. एस. सी. सी.) कहते हैं । यह क्रिया कम तापमान पर होती है । वास्तव में करीब-करीब सभी धातुएं हाइड्रोजन सल्फाइड वातावरण में एस. एस. सी. सी. के प्रति संवेदनशील रहती हैं ।

कूप से उत्पादित तेल एवं गैस को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने के लिए पाइप लाइनों का उपयोग होता है । उत्पादित तेल, गैस एवं जल में प्रायः हाइड्रोजन सल्फाइड, कार्बन डाइऑक्साइड गैस, सल्फेट रिड्यूसिंग तथा अम्ल उत्पादक बैक्टिरिया और अन्य संक्षारण प्रेरक पदार्थ उपस्थित रहते हैं जो पाइप लाइनों के संक्षारण के लिए उत्तरदायी होते हैं, चित्र-2 । इस प्रकार के संक्षारण प्रेरक पदार्थों से युक्त खनिज तेल एवं गैस के परिवहन के लिए विशेष प्रकार की मिश्रधातुओं से निर्मित पाइप लाइनों का प्रयोग बढ़ रहा है ।

तालिका-1
एन. ए. सी. ई. द्वारा अम्लीय वातावरण के लिए अनुमोदित मिश्रधातुएं

मिश्रधातु	कठोरता (एच.आर.सी)
ऑस्टेनटिक स्टेनलेस स्टील	22
फेरेटिल स्टेनलेस स्टील	22
मारटेनस्टिक स्टेनलेस स्टील	22
डुपलेक्स स्टेनलेस स्टील	28
निकल-कॉपर मिश्रधातु	
यू. एम. एस. एन. ओ.-4400	35
निकल-आयरन-क्रोमियम मिश्रधातु	
यू. एम. एस. एन. ओ.-8800	35
निकल-क्रोमियम मिश्रधातु	
यू. एम. एस. एन. ओ.-6600	35
निकल-क्रोमियम-मोलिब्डनम मिश्रधातु	
यू. एम. एस. एन. ओ.-6002	35

विभिन्न धातुओं और मिश्रधातुओं के चयन के लिए अमरीका की नेशनल एसोशिएसन ऑफ कॅरोजन इंजीनियर्स (एन. ए. सी. ई.) ने, जो कि संपूर्ण विश्व में संक्षारण के प्रति जागरूकता बनाये रखने तथा इसे एक निश्चित माप तक कम करने के लिए सतत् प्रयत्नशील है, एक मानक एम. आर- 01-75-95 बनाया है। इस मानक के अनुसार कार्बन तथा निम्न मिश्रधातु स्टील, जिसकी कठोरता 22 एच. आर. सी. (कठोरता की माप) से कम, तथा निकल 1% से कम है, तेल क्षेत्र में प्रयोग के लिए साधारणतः उपयोगी है। हाइड्रोजन सल्फाइड वातावरण में उपयोग में लाये जाने वाले एन. ए. सी. ई. द्वारा अनुमोदित कुछ मिश्रधातुएं तालिका-1 में दिखायी गयी हैं।

तेल क्षेत्र में प्रयुक्त मिश्रधातुएं :

गहरे गर्म कूपों के लिए उच्च शक्ति के ऐसे ट्यूबलर्स की आवश्यकता होती है जो कूप में उच्च अक्षीय भार (एक्सियल लोड) तथा तनाव भार को सह सकें तथा चटके (क्रैक) या फटे नहीं।

कूप केंसिग, ट्यूबिंग तथा वेधन पाइप के लिए अमेरिकन पेट्रोलियम इंस्टीट्यूट (ए. पी. आई.) द्वारा अनुमोदित निम्न तथा उच्च शक्ति दोनों प्रकार की मिश्रधातुओं का उपयोग किया जाता है। J-55 और K-55 मिश्रधातुएं कम गहरे कूपों के लिए केसिंग तथा ट्यूबिंग बनाने में इस्तेमाल की जाती हैं। इसी प्रकार हाइड्रोजन सल्फाइड युक्त वातावरण के लिए C-75, L-80, C-90 और C-95 जैसी उच्च शक्ति की मिश्रधातुओं से निर्मित कूप केसिंग तथा ट्यूबिंग का उपयोग किया जाता है। स्टील ट्यूबलर्स उच्च हाइड्रोजन सल्फाइड वातावरण में उच्च पराभव सामर्थ्य (ईल्ड स्ट्रैन्थ) के कारण प्रायः असफल हो जाते हैं।

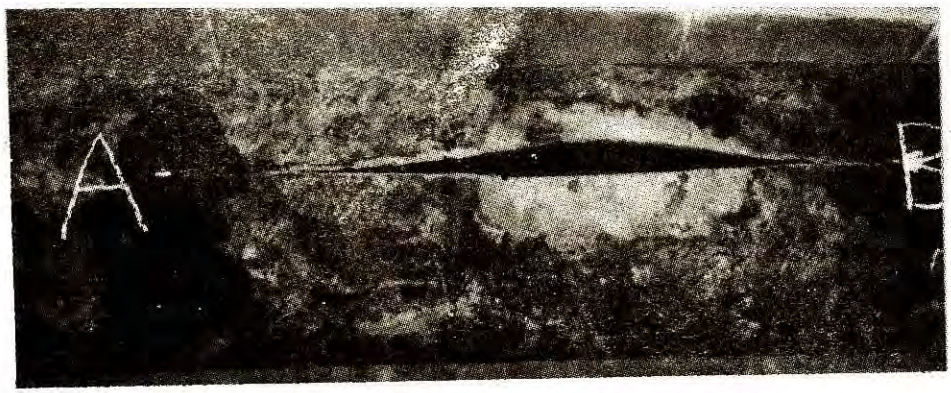

चित्र-2 : आंतरिक संक्षारण एवं उच्च दबाव के कारण फटा पाइप

तालिका-2
अम्लीय कूप से उत्पादित जल में संक्षारण गति की माप

धातु	तापमान ^0C	संक्षारण गति (मिल्स/वर्ष)
कार्बन स्टील	22	16.37
इनकोलॉय	22	0.04
कार्बन स्टील	90	20.54
इनकोलॉय	90	0.195

अमरीका तथा योरप के कुछ अन्य देशों में 13% क्रोमियम स्टील तथा 22-25% डुपलेक्स स्टेनलेस स्टील के ट्यूबलर्स को गहरे गर्म गैस कूपों में, जहां हाइड्रोजन सल्फाइड की मात्रा कम पायी गयी, सफलतापूर्वक उपयोग किया गया है । मगर हाइड्रोजन सल्फाइड की अधिक सांद्रता के प्रति ये उच्च क्रोमियम युक्त स्टील संवेदनशील हैं । अतः इन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर उच्च निकल युक्त मिश्रधातुओं के प्रयोग का प्रयास किया जा रहा है ।

इनकोलॉय-825, इनकोलॉय-G-3, इनकोलॉय-C-276, हेस्टएलॉय-C-276 इत्यादि कुछ प्रमुख निकल पर आधारित मिश्रधातुएं हैं जिनका उपयोग आजकल गर्म, अति गहरे तथा उच्च दबाव वाले हाइड्रोजन सल्फाइड युक्त कूपों में करने के प्रयोग चल रहे हैं । प्रयोगशाला में किये गये परीक्षणों ने इन मिश्रधातुओं की उपयोगिता तीव्र संक्षारक वातावरण के लिए सिद्ध कर दी है ।

मेरीअन तेल क्षेत्र, जुरासिक नारफेल्ट क्षेत्र तथा मैक्सिको खाड़ी में अलबाना तेल क्षेत्र के कई कूपों में निकल आधारित मिश्रधातुओं से निर्मित ट्यूबलर्स का उपयोग सफलतापूर्वक किया गया है । भारत में अभी तक डाउनहोल ट्यूबलर्स में इस प्रकार की मिश्रधातुओं का उपयोग नहीं किया है ।

पाइप लाइन के लिए स्टील :

पाइप लाइनों का कार्य मुख्यतः खनिज तेल, गैस एवं इनके मिश्रण को कूप प्लेटफार्म से प्रोसेस प्लेटफार्म तक ले जाना तथा फिर तेल, गैस आदि को अलग कर प्रोसेस प्लेटफार्म से समुद्र की सतह पर से होते हुए उपतट पर स्थित तेल तथा गैस टैंकरों तक ले जाना होता है । अपतट (ऑफ-शोर) तथा उपतट (ऑन-शोर) के लिए प्रयुक्त पाइप लाइनों की धातुओं के गुणों में अंतर होता है ।

खनिज तेल एवं गैस, जिसमें हाइड्रोजन सल्फाइड की मात्रा एक पी. पी. एम. से कम होती है, स्वीट (मधु-गैस) कहलाती है और यदि यह मात्रा एक पी. पी. एम. से अधिक है तब यह सॉउर (अम्लीय) कहलाती है । स्वीट खनिज तेल एवं गैस के लिए अपतट में एन. ए. सी. ई. मानक एम. आर-01-75-95 द्वारा स्वीकृत ए. पी. आई. 5L ग्रेड ए, बी एवं X-42 से X-65 ग्रेड का पाइप उपयोग में लाया जाता है । परंतु यदि खनिज तेल एवं गैस अम्लीय है और उसमें कार्बन डाइऑक्साइड या क्लोराइड आयन की मात्रा अधिक है, तो पाइप संक्षारण को रोकने के लिए या तो पाइप लाइनों में तेल एवं गैस के साथ रसायनिक संक्षारण संदमकों (इन्हीबिटरों) का उपयोग करते हैं या फिर उच्च गुण वाले संक्षारण प्रतिरोधक मिश्रधातु निर्मित पाइपों का प्रयोग करते हैं । रसायनिक संक्षारण संदमक, धातु के पाइप की भीतरी सतह पर एक पतली मजबूत पर्त बनाकर धातु सतह को संक्षारक तेल एवं गैस के संपर्क में आने से रोकते हैं ।

रसायनिक संदमकों का प्रयोग कभी-कभी आर्थिक दृष्टिकोण से लाभप्रद नहीं रहता । अतः तीव्र अम्लीय वातावरण में डुपलेक्स स्टेनलैस स्टील निर्मित पाइपों का उपयोग कई देशों मे अपतट से गैस परिवहन के लिए किया गया है । बंबई अपतट पर भी तेल एवं प्राकृतिक गैस कॉरपोरेशन लि. (ओ. एन. जी. सी.) ने अम्लीय गैस कूपों से उत्पन्न गैस को उपतट तक ले जाने के लिए डुपलेक्स स्टील पाइप का उपयोग किया है । इसके अलावा ओ. एन. जी. सी. ने विश्व में सबसे पहले उच्च जापानी तकनीक द्वारा निर्मित निकल आधारित मिश्रधातु के आवरणितपाइपों का उपयोग अम्लीय गैस के परिवहन के लिए मुंबई अपतट में किया है ।

प्रयोगशाला में किये गये प्रयोगों ने निकल आधारित मिश्रधातु इनकोलॉय-825 को तीव्र अम्लीय वातावरण में

भी संक्षारण प्रतिरोधक पाया है । तालिका-2 में, प्रयोगशाला में कार्बन स्टील तथा इनकोलॉय स्टील की संक्षारण की गति, जिसे अम्लीय कूप द्वारा उत्पादित जल में मापा गया, दर्शायी गयी है। चूँकि आर्थिक दृष्टि से यह स्टील अत्यधिक मंहगी पड़ती है अत: इसकी एक पतली पर्त को उच्च शक्ति कार्बन स्टील से आवरणित कर पाइप बनाया गया। ठोस इनकोलॉय -825 पाइप की तुलना में आवरणित पाइप अधिक सस्ता तथा मजबूत पाया गया। यह पाइप 1987 से बंबई अपतट में ओ. एन. जी. सी. के दक्षिणी बसीन क्षेत्र में उपयोग में लाया जा रहा है।

प्लेटफार्म तथा राइजर का बचाव :

अपतट में, कूप के मुख से प्लेटफार्म की सतह तक तथा फिर प्लेटफार्म से समुद्र सतह पर पाइप लाइनों तक, खनिज तेल एवं गैस लाने एवं ले जाने के लिए प्रयुक्त पाइप को राइजर कहते हैं। यह बहुत ही महत्वपूर्ण पाइप होता है। इसके टूटने या इसमें छिद्र होने से तेल एवं गैस के समुद्र में बहाव के कारण, प्रदूषण तथा आग लगने आदि का खतरा रहता है। आर्थिक दृष्टि से यह दुर्घटना अत्यधिक हानिप्रद है। राइजर के फटने से तेल रिसाव की घटनाएं भारत के साथ-साथ विश्व के अन्य सभी तेल उत्पादक देशों में हुई हैं। राइजर से रिसाव मुख्यत: समुद्र के स्प्लैश जोन क्षेत्र में राइजर पाइप के बाहरी संक्षारण तथा अपरगन (इरोजन) के सम्मिलित प्रयास से होता है। अत: स्प्लैश जोन में राइजर तथा प्लेटफार्म जैकेट के बचाव के लिए उच्च तकनीकी अपनायी जाती है। विश्व के लगभग सभी तेल उत्पादक देशों में अपतट पर राइजर के स्टील पाइपों को स्प्लैश जोन में समुद्र सतह से करीब 5-6 मीटर नीचे तक 3-4 मीटर ऊपर तक मोनल मिश्रधातु-400 की पतली पर्त (करीब 4 से 6 मिमी. मोटी) से आवरणित कर दिया जाता है क्योंकि मोनल मिश्रधातु-400, स्प्लैस जोन क्षेत्र में समुद्र की तीव्र लहरों तथा संक्षारण के प्रति प्रतिरोधक पायी गयी है। इसके अलावा इनकोनल एलॉय-625 को भी स्टील राइजर की बाहरी पर्त के रूप में प्रयुक्त किया जा रहा है।

मुंबई ऑफशोर में अधिकतर राइजर पाइपों में मोनल-400 का उपयोग किया गया है।

अन्य देशों में राइजर के बचाव के लिए अब मोनल-400 के स्थान पर नियोप्रिन रबड़ तथा कॉपर-निकल (90/10) आवरण की कोटिंग का उपयोग हो रहा है। इस आवरण में प्रयुक्त कॉपर-निकल के कारण सामुद्रिक सूक्ष्म तथा दीर्ध जंतु आदि राइजर पाइप तथा प्लेटफार्म की टांगों पर अपना आवास नहीं बना पाते हैं तथा नियोप्रिन रबड़ कोटिंग के कारण संक्षारण से भी बचाव होता है। मुंबई ऑफ-शोर (अपतट) में भी इस तरह की कोटिंग के उपयोग के लिए प्रयत्न किये जा रहे हैं।

खनिज तेल एवं गैस दोहन तथा परिवहन के लिए उपयोग में लाये जाने वाले ट्यूबलर्स तथा पाइपों आदि का चयन कूपों के निर्दिष्ट जीवन काल के आधार पर किया जाता है। परंतु प्राय: तैलाशय से उत्पन्न खनिज तेल एवं गैस की संक्षारकता, उच्चताप और दबाव के कारण ये यंत्र अपने जीवन काल से पहले ही संक्षारण या यांत्रिक कारणों से चटकने, फटने या धातु ह्रास के कारण असफल हो जाते हैं। इस तरह की घटनाएं गहरे तैलाशयों में वेधन तथा दोहन के समय अधिक पायी गयी हैं। अत: उच्च शक्तियुक्त, संक्षारण प्रतिरोधक मिश्रधातुओं से निर्मित ट्यूबलर्स, पाइपों तथा अन्य उत्पादनों में प्रयुक्त यंत्रों का प्रयोग, खनिज तेल एवं गैस उत्पादन के लिए करने के प्रयास किये जा रहे हैं। अत्यधिक महंगे होने के कारण इनका उपयोग अभी सीमित तथा अत्यावश्यक स्थानों पर ही किया जा रहा है।

❐❐❐

पृथ्वी पर चांद

डॉ. राम कुमार तिवारी,
द्वारा तीर्थ सदन, लेख राज पथ,
मोरावादी, रांची - 834 008.

पृथ्वी अपनी धुन में मस्त अपनी कक्षा पर चली जा रही थी। उसकी गति न कभी धीमी होती न तेज। निरंतर एक समान चाल से वह अपनी कक्षा पर लगभग 30 कि. मी. प्रति सेकंड की रफ्तार से चली जा रही थी। क्यों न चले, चलना उसकी आदत सी हो गयी है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि उसे गिन-गिन कर अपने अक्ष में 365 बार लट्टू की तरह घूमना भी पड़ता है और साथ ही इतने ही समय में 930 लाख किमी. की दूरी तय करते हुए सूर्य की परिक्रमा भी पूरी करनी पड़ती है।

पृथ्वी अभी यह सोच ही रही थी कि अब उसकी एक और परिक्रमा पूरी होने ही वाली है कि अचानक उसके दाहिने हिस्से से मनुष्यों के खुशी मनाने की आवाजें आने लगीं। दाहिना हिस्सा रात्रि के आगोश में था किंतु सभी लोग जगे हुए थे और एक दूसरे को नव वर्ष का अभिनंदन कह रहे थे। पृथ्वी को समझते देर नहीं लगी कि अब उसकी यह परिक्रमा भी पूरी हो गयी है।

चलते-चलते पृथ्वी यह याद करने लगी कि कितनी लंबी दूरी उसने फिर पूरी कर ली है और फिर से 365 बार का चक्कर भी पूरा कर लिया है। वह अपनी गोद में हँसते किलकारी करते मानवों को निहारती रही। बारी-बारी से सभी देश के लोग पृथ्वी पर नववर्ष की खुशियाँ मनाते जा रहे थे। एक हिस्से के लोगों का समय बीतता तो पृथ्वी के दूसरे हिस्से के लोग भी क्रमशः नववर्ष उत्सव में शामिल होते जाते। जैसे ही उनके देश में बारह बजे रात्रि का आगमन होता जाता, लोग खुशियों में डूब जाते।

पृथ्वी ने एक गर्व भरी अगंडाई लेकर सूर्य की ओर देखा। वह सोच रही थी, - 'मेरे जैसा भाग्य किसका है जिसकी गोद में करोड़ों करोड़ संतानें इस तरह हँसी खुशी मनाती हों। स्वयं की बुद्धि से ज्ञान विज्ञान की प्रगति कर, अपना जीवन संपन्न समृद्ध कर आराम की जिदंगी बसर करती हों।'

उसने मन ही मन 9 करोड़ 30 लाख मील की दूरी पर चमक रहे सूर्य को बड़ी कृतज्ञता भरी दृष्टि से नमस्कार किया। अपने पिता सूर्य की वह एकमात्र बेटी थी। सूर्य ने भी उसे इकलौती बेटी जानकर अपने आंगन में ऐसी जगह बिठाया था कि पृथ्वी का घर आंगन सुंदर आबोहवा, पेड़-पौधों एवं सागर-सरिताओं से भर गया। यही नहीं उसकी गोद करोड़ों संतानों से भर गयी। संतानों का लालन-पालन उसकी अपनी ही वनस्पतियों के फल, फूल और मूल से होने लगा। पृथ्वी यह सब देख सुन कर अपने पिता के प्रति नतमस्तक हो उठी। प्रणाम कर वह चंद्रमा की ओर देखने लगी तो उसे अपनी ही ओर निहारते हुए पाया। चंद्रमा पृथ्वी को देखकर मुस्कराते हुए बोला,

"तुम बिलकुल ठीक ही सोच ही रही हो कि तुम्हारी संतानों ने ज्ञान-विज्ञान में काफी उन्नति कर ली है। अब देखो न पहले लोग विक्रम संवत ही रच पाये थे। भारत सहित संपूर्ण आर्यावर्त उसे मानता था। मैं तब नववर्ष का यह उत्सव देख नहीं पाता था। लेकिन इधर कुछ दिनों से जब अंग्रेजी कैलेंडर की शुरुआत हुई तो लोग बारह बजे रात्रि में ही नववर्ष मनाने लगे। तब से मैं भी पृथ्वी वासियों के इस उत्सव को आसानी से देख लेता हूँ।"

"जिसे तुम अंग्रेजी कैलेंडर कह रहे हो वह अन्य कुछ नहीं बल्कि भारतीय पद्धति ही है। शायद तुम्हें इस सब की जानकारी नहीं है, इसीलिए ऐसा कहते हो। अंग्रेजी

कैलेंडर भी तो भारतीयों की तरह सूर्य वर्ष का अनुसरण करता है। इसका सहज प्रमाण यह है कि भारत में लोग सुबह 5.30 बजे तिथि बदलते हैं अपने विक्रम संवत पद्धति के अनुसार। लंदन में ठीक उसी समय 12.00 बजे रात्रि का समय रहता है। स्पष्ट है कि वे लोग भारतीय विधि का अनुसरण करते हैं। यह कुछ अन्य तो नहीं," पृथ्वी बोली।

"यह तो बड़ी अजीब सी बात बताती हो ! तो फिर ऐसा क्यों होता है कि भारतीय पद्धति में नव वर्ष मार्च महीने में मनाया जाता है ?"

"शायद तुम भूल रहे हो। पहले तो ब्रिटेन के लोग भी मार्च महीने में ही नववर्ष मनाया करते थे। यह तो 1752 ई. की बात है कि वहाँ के लोगों ने अपने पार्लियामेंट में विधेयक लाकर मार्च को बदल दिया और जनवरी को प्रारंभ माह निश्चित किया। तब से लोग जनवरी में ही नववर्ष मनाने लगे हैं। वस्तुतः यह परिवर्तन ब्रिटेन वासियों के लिए ही था किंतु अंग्रेजी प्रथा सें रुचि रखने वाले भारतवासी भी जनवरी के मोह में फंस गये हैं। वैसे भारत के लिए नववर्ष है चैत्र मास का प्रारंभ।"

पृथ्वी की बात सुनकर चंद्रमा का कौतुहल बढ़ता ही गया तो वह विनम्र भाव से बोला, "एक बात पूँछू दीदी ! मैं बहुत दिनों से पूछना चाहता था, किंतु आज नववर्ष है अतः याद आ गयी है।"

"पूछो, क्या बात है ? मैं अगर जानती हूं तो अवश्य बताऊंगी।"

"तुम्हारी सभी संतानें अलग-अलग दिनों में नव वर्ष मनाती हैं क्या ?"

"हां, ऐसा ही है। यहां कुछ लोग विक्रम संवत मानते हैं, कुछ लोग हिजरी संवत तो कुछ नेपाली, बांगला और शक संवत चलाते हैं। साथ ही यह अंग्रेजी संवत भी जिसे 'इयर' (Year) कहते हैं मानते हैं। किंतु, चाहे जो भी संवत हो वे दो ही आधार पर बनाये गये हैं।"

"दो आधार ! कौन से आधार हैं वे ?"

पृथ्वी मुस्कराई और बोली, "भैया चंद्रमा ! थोड़ी नजर उठाकर पिताश्री सूर्य की ओर देखो जिनकी रोशनी से तुम्हारा तन-बदन चमक रहा है। एक आधार उनके चारों ओर प्रदक्षिणा करती मेरी स्वयं की गति है; और दूसरा आधार, तुम हो। तुम्हारी गति है। तुम्हारी गति जिससे तुम मेरी परिक्रमा करते हो।"

"मेरी गति को कैसे आधार बनाया है ?" चाँद उत्सुक होता जा रहा था।

"देखो भैया ! इसे विस्तार से जानना चाहते हो तो तुम्हें मेरे यहाँ आना होगा।"

"तुम्हारे यहाँ ! ना ना ना ! बहुत दिन हुए एक बार तुम्हारे यहाँ जाने का मौका मिला था। क्या कहूँ, दुर्दशा हो गयी थी मेरी। इतनी मार पड़ी थी कि अभी भी दाग छूटा नहीं है घावों का ! जबकि मैं देवराज इंद्र के साथ गया था।" चंद्रमा भयभीत होकर बोला।

"घबड़ाओ नहीं भैया ! तनिक सोचो। उस समय तुम क्यों आये थे यहाँ पर। पृथ्वी वासी को छलने के लिए ही न। कपट रूप धारण कर यहाँ आये थे। अब तुम्हीं बताओ, इतना अच्छा खासा व्यक्तित्व है तुम्हारा, तुम्हें मुर्गा बनने की क्या जरूरत थी ? वह भी मेरे ही घर में किसी नारी को अपमानित करने की साजिश लेकर आये थे। मेरी ऋषि संतान को ठगने आये। यहां इसे भला कैसे बर्दाश्त किया जाता ! अब भूल जाओ इन बातों को।"

"अगर तुम्हें सचमुच जानना है कि यहाँ के लोग तुम्हारी और मेरी गति को आधार मानकर समय की गणना कैसे करते हैं तो यहां आना ही होगा। उस वक्त तुम मुर्गा बन सके थे तो अब विद्यार्थी नहीं बन सकते क्या ?

"यहाँ कितने कितने विश्वविद्यालय खुल गये हैं। किसी भी विश्व-विद्यालय में चले आओ और अंतरिक्ष विज्ञान विभाग, संपर्क करो। तुम्हें सब कुछ पता चल जायेगा."

"तब ऐसा करता हूं कि यूरोप अथवा अमेरिका में कहीं चला जाता हूँ। भारतवासियों से मुझे डर सा लगा रहता है। कहीं गौतम ऋषि के कोई वंशज मिल गये तो पता नहीं मेरी क्या गत बनायेंगे।"

"नहीं नहीं ! अमेरिका, यूरोप मत जाना। वहाँ तो केवल मेरी ही गति के आधार पर लोग समय की गणना करते हैं। एक भारत ही देश है जहाँ मेरी और तुम्हारी दोनों की गतियों की गणना जाती है। यहाँ दोनों को सही माना

जाता है। मजे की बात तो यह है कि संपूर्ण भारत में पूजा पाठ से लेकर शुभ कर्मों के सारे मुहुर्त तुम्हारी ही गति पर गणना करके निर्धारित किये जाते हैं। पंडितों ने तुम्हारी ही गति पर बड़े-बड़े पंचांग बनाना शुरुकर दिया है। चाहो तो तुम बनारस जाओ, वहाँ मिल जायेंगे तुम्हें अनेक ऐसे पंडित जो तुम्हारी गति को अच्छी तरह समझते हैं। बंगाल के नदिया जिले में जा सकते हो; बिहार के मिथिला प्रदेश में जा सकते हो; या फिर किसी विश्वविद्यालय में जाओ। जैसी इच्छा तुम्हारी, लेकिन भारत ही आना।"

"तब तो मैं किसी विश्वविद्यालय में ही जाऊँगा। वह स्थान ज्यादा सुरक्षित है। पंडितों के यहाँ कहीं गौतम ऋषि के वंशज न मिल जायें। तो ठीक है, मैं अभी ही यात्रा की शुरुआत करता हूँ और आ रहा हूँ तुम्हारे यहाँ।"

चंद्रमा को औसतन 2,40,000 मील की दूरी तय करने में देर नहीं हुई। एक से डेढ़ मिनट के भीतर ही वह वेश बदल कर पृथ्वी पर उतर आया। इस बार उसने मुर्गे का नहीं बल्कि एक अच्छे-खासे युवक का रूप धारण किया था। उसे यहाँ संबंधित विषय के प्राध्यापक का आवास ढूंढ़ने में कोई दिक्कत नहीं हुई। किंतु प्राध्यापक के आलीशान भवन को देखकर वह चकित रहा गया। उसे अपने पूर्व पृथ्वी दर्शन के समय की गौतम ऋषि की कुटिया अच्छी तरह याद थी। विद्यादान की जहाँ प्रथा थी वहाँ के आचार्यों को आज इस तरह भौतिकता में लिप्त देखकर पृथ्वी लोक में हुए परिवर्तन का अहसास उसे तब अच्छी तरह हुआ जब वह कई प्राचार्यों, आचार्यों से मिला। उसे यह भी मालूम हो गया कि विद्या दान जैसी बात अब यहां नहीं रह गयी है। बल्कि विद्या का जमकर व्यापार हो रहा है। इस व्यापार में यहाँ की सरकार से लेकर आचार्यों सहित अभिभावक और विद्यार्थी भी संलिप्त हैं।

चंद्रमा को उस समय घोर आश्चर्य व दुख हुआ जब कई आचार्यों ने उससे कहा, "कुछ जानना समझना हो तो ट्यूशन कर लो। ऐसे मुफ्त में हमारे पास वक्त नहीं है।"

निराश होकर तब उसने पृथ्वी से पूछा, "यह क्या हो रहा है दीदी! तुम्हारे घर संसार में ?"

"बस अपनी संतानों की इसी तृष्णा से मैं त्रस्त हूँ भैय्या! क्या करूँ? वैसे मेरे पास तो इन्हें दंडित करने के लिए काफी उपाय हैं। मैं चाहूं तो इन्हें तत्क्षण इनके लोभ का प्रतिफल चखा दूँ। इन्हें दाने-दाने और बूँद-बूँद पानी के लिए मैं तरसा सकती हूँ। किंतु क्या करूँ? अपनी संतान पर मां की ममता तो तुम समझते ही हो। वैसे तुम निराश न हो। मेरे हजारों नालायक पुत्रों में से एक-दो लायक भी मिल जायेंगे जो निस्वार्थ सेवा और मातृभूमि की लाज रखने के लिए ही जीवन समर्पित कर रहे हैं। ढूंढो, अवश्य मिल जायेंगे।"

पृथ्वी की बात से चंद्रमा को उसकी कुंठा और विवशता दोनों का पूरा अभास हो चुका था। फिर भी उसने ढूँढ़ने का क्रम जारी रखा और उसे अंततः एक प्राध्यापक मिल गया। वह प्राध्यापक अपनी विशाल प्रयोगशाला में कुछ कर रहा था। प्रयोगशाला में वह अकेला ही था। चंद्रमा सहमते हुए उनके पास गया और उनका चरण स्पर्श कर हाथ जोड़ खड़ा हो गया। प्राध्यापक ने चकित हो चंद्रमा की ओर देखा, मानो आँखों से ही पूछना चाहते हों - 'प्रियवर तुम कौन हो ? क्या चाहते हो ? यहाँ क्यों आये हो ?'

चंद्रमा स्वतः बोल उठा, "मान्यवर क्षमा चाहता हूं कि बिना पूर्व अनुमति के आपके समक्ष आ खड़ा हुआ हूँ। मैं एक जिज्ञासु हूँ, एक दो बातें पूछना चाहता हूँ। वैसे मैं जानता हूँ आप अंतरिक्ष विषय के वैज्ञानिक हैं। इतने बड़े विद्वान से इतनी छोटी सी बात पूछना अच्छा नहीं लग रहा है किंतु क्या करूँ कोई बताने को तैयार ही नहीं होता है। कृपया आप निराश न करें," चंद्रमा ने विनय मुद्रा में हाथ जोड़ दिये।

युवक का विनय भाव एवं जिज्ञासा देखकर वैज्ञानिक प्राध्यापक ने उसे बगल में रखी कुर्सी पर बैठने का इशारा किया और स्वयं भी एक कुर्सी पर बैठ गया। अब दोनों आमने सामने थे। वैज्ञानिक ने मेज पर रखे एक डिब्बे को खोलते हुए कहा, "अभी भोजन का समय है। आओ पहले हम लोग साथ-साथ भोजन करें। आज नववर्ष का दिन भी है। मैं एक विशेष काम से यहाँ आया था। चलो अच्छा हुआ जो आज अकेले भोजन नहीं करना

पड़ा। हम लोग भोजन भी करेंगे और बातें भी करेंगे।"

"ज्यादा कुछ नहीं पूछना चाहता हूँ। मैं तो बस इतना ही जानना चाहता हूँ कि पृथ्वी की गति और चंद्रमा की गति पर यहाँ लोगों ने कैलेंडर, पंचांग आदि कैसे बना लिया है ? सुनता हूँ सौर वर्ष और चंद्र वर्ष के रूप में समय को विभाजित किया गया है। यहाँ इसी आधार पर अलग-अलग दिनों में नववर्ष मनाया जाता है। यही सब जानना चाहता हूँ।" चंद्रमा की नजर वैज्ञानिक के टिफिन पर टिकी हुई थी। शायद नववर्ष के उपलक्ष्य में उसकी पत्नी ने विविध प्रकार की खाद्य सामग्रियां रख दी थीं।

"यह तो बहुत सरल प्रश्न है। स्कूल के बच्चे भी इसे अच्छी तरह जानते हैं। तुम इतने बड़े युवक हो और आज तक यह नहीं जानते। आश्चर्य लगता है। तुम कहाँ पढ़ते हो ?"

वैज्ञानिक के इस अप्रत्याशित प्रश्न से चाँद हड़बड़ा उठा। उसे कुछ उत्तर नहीं सूझा तो उसने बात बदलते हुए पानी की इच्छा प्रकट की। वैज्ञानिक ने उसे फिल्टर की ओर इशारा कर दिया। चाँद क्या जाने फिल्टर से कैसे पानी लिया जाता है। वैज्ञानिक को बताना पड़ा। तभी वैज्ञानिक समझ गया, यह गाँव-देहात से आया मालूम होता है। उसने तुरंत पूछ लिया, "गांव से आये हो क्या ?"

"हां, हां, मैं गाँव में ही रहता हूँ," चंद्रमा को बहाना मिल गया।

"तो फिर सुनो। ध्यान देकर सुनना तभी समझोगे।" वैज्ञानिक ने कहना आरंभ किया।

"पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है, और पृथ्वी की परिक्रमा करता है चाँद। पृथ्वी जब एक परिक्रमा पूरी करती है तो उसे 365 दिनों का समय लगता है। इसी समय को एक सौर वर्ष करते है।

"चंद्रमा पृथ्वी की परिक्रमा मात्र 29 1/2 दिनों में ही पूरी कर लेता है। इसी तरह जब वह पृथ्वी की बारह परिक्रमा करता है तो बारह चंद्रमास होते हैं। यह समय एक चंद्र वर्ष के बराबर होता है। किंतु यह 29 1/2x 12 = 354 दिनों का ही होता है।"

युवक भौं सिकोड़ते संकित स्वर में बोल उठा, "29 1/2 दिनों में एक बार परिक्रमा करता है ? शायद कुछ कम समय में ही यह परिक्रमा पूरी कर लेता है ?" (युवक तो चंद्रमा ही था। उसे अपनी गति मालूम थी।)

"हाँ, हाँ, एक ही बात है भाई। चंद्रमा भले ही 27 दिन 7 घंटा 43 मिनट और 11 1/2 सेकंड में पृथ्वी का एक चक्कर पूरा करता है किंतु पृथ्वी भी तो सूर्य की परिक्रमा करते हुए आगे बढ़ती रहती है। अतः प्रतिदिन जब चंद्रमा अपने मूल स्थान पर लौट कर आता है तो पृथ्वी अपने पूर्व स्थान से कुछ आगे हट चुकी होती है जिसे पूरा करने में प्रतिदिन चंद्रमा को 360^0 चलने के बाद और थोड़ा आगे चलना पड़ता है। इस अधिक चाल को जोड़ने से यह काल 27 दिन 7 घंटे के बजाय 29 1/2 दिनों का होता है। 27 दिन 7 घंटा वाले समय को हम लोग सीडरल माह (sidereal month) तथा 29 1/2 दिन वाले समय को सिनोडिक (synodic) माह कहते हैं। चंद्रमा की गति के आधार पर गणना करने वाले 29 1/2 दिनों का ही महीना मानते हैं तथा 354 दिनों का वर्ष मानते हैं। किंतु 365 दिन की तुलना में यह 11 दिन कम होता है जिसे प्रति तीन साल में जोड़कर एक माह अधिक बढ़ाकर इसकी पूर्ति करते हैं जिसे 'अधिक मास' या 'मलेमास' कहा जाता है।"

युवक का ध्यान टिफिन में देखकर वैज्ञानिक को समझते देर नहीं लगी कि इसे भूख लग रही है। इधर चंद्रमा को पृथ्वी पर भोजन करने का प्रथम अवसर मिलने जा रहा था। इस तरह के पकवान उसने कभी देखे तक नहीं थे। वैज्ञानिक ने कहा, "संकोच मत करो, खाओ। सभी घर के बने हैं।"

युवक खाने लगा तो वैज्ञानिक ने आगे कहा, "और इसी तरह जो लोग पृथ्वी की गति को मानकर समय की गणना करते हैं समझो वे सौर वर्ष मानते हैं। इनका वर्ष काल 12 महीनों का या 365 दिनों वाला होता है।"

"श्रीमन ! यह बतायें कि हर हाल में लोगों ने महीनों की संख्या 12 ही क्यों रखी ?" युवक ने पूछा।

"वर्ष में 12 माह इसलिए मानते हैं कि पृथ्वी चंद्रमा एवं अन्य ग्रहों की तरह सूर्य का स्थान भी नक्षत्रों के बीच बदलता रहता है।

बात काटकर युवक ने पूछा, "नक्षत्र क्या होता है?"

"आसमान में जगह-जगह चमकते हुए तारों के जत्थे हैं जो प्रकाश बिंदुओं से बनी विशेष आकृतियों से जान पड़ते हैं। इनके नाम कहीं आकृतियों की समता पर और कहीं पौराणिक देवताओं पर रखे गये। इन जत्थों को 'नक्षत्र' कहते हैं। ये नक्षत्र एक-एक वृत की परिधि पर घूमते रहते हैं।"

"क्या इन्हें ही 'राशि' कहा जाता है ?"

"हाँ, किंतु इन्हें ऐसे समझना होगा। मैं कह रहा था कि सूर्य का स्थान नक्षत्रों के बीच बदलता रहता है। किसी पास के नक्षत्र से सूर्य प्रतिदिन अपने प्रत्यक्ष व्यास के लगभग दूने मान के बराबर पूरब की ओर खिसक जाता है। इस प्रकार एक वर्ष में वह फिर अपने पहले स्थान पर पहुंच जाता है। नक्षत्रों के बीच सूर्य के इस वार्षिक मार्ग को बारह खंडों में बांटा गया है जिनके नाम उन खडों में स्थित मुख्य नक्षत्र के नाम पर रखे गये हैं। इन खडों को ही 'राशि' कहते हैं। चूँकि सूर्य के इस मार्ग के आसपास ही अन्य ग्रह और चंद्र भी चलते हैं इसीलिए इनका भी इन्हीं राशियों में संक्रमण होता है।

"तब तो सभी एक दूसरे की परिक्रमा करते हैं। फिर काल गणना के लिए दो आधार ही क्यों लिये जाते हैं ?" युवक ने पूछा।

"दो नहीं तीन आधार हो जाते हैं - चंद्र, सूर्य और नक्षत्र। दो पूर्णिमाओं के बीच का समय चंद्रमास कहा जाता है। सूर्य क्रमशः जिन दो क्षणों में ठीक सिर पर रहता है उनके बीच के काल को एक सौर दिन कहते हैं। यदि किसी नक्षत्र की ऐसी ही स्थिति से दिन का मान निकाला जाये तो वह नक्षत्र दिन होगा। बारह राशियों में सूर्य के संक्रमण से संक्रांति-मास और राशि वर्ष निकलते हैं। पर ये सभी काल मान समान नहीं होते। चंद्रमास 29 ½सौर दिनों का होता है। सौर दिन के 23 घंटे 56 मिनटों का एक नक्षत्र दिनों का होता है। 365½सौर दिनों का एक राशि वर्ष होता है। लौकिक दृष्टि से चंद्रकाल अधिक प्रत्यक्ष है, पर ज्योतिष की दृष्टि से नक्षत्र-काल ही सबसे अधिक शुद्ध है। इस पर बाद में फिर भी विस्तार से बताऊंगा।"

"जी श्रीमान ! आप बहुत स्पष्ट समझा रहे हैं। किंतु एक शंका है।"

"कहो।"

"सामान्यता चौबीस घंटों का एक दिन होता है। अतः एक वर्ष में 365 x 24 = 8760 घंटे होंगे। अब इधर एक माह में घटों की गणना करते हैं तो 30 x 24 = 720 घंटे होते हैं जिसे पुनः 12 से गुणा करने पर एक वर्ष में कुल 8640 घंटे ही होते हैं जो 120 घंटे अर्थात 5 दिन कम हो जाते हैं, ऐसा क्यों ?

"तुम्हारे हिसाब से 30 x 12 = 360 दिन का ही वर्ष होता है तो 365 दिन के वर्ष के 5 दिनों का क्या होता है ? इसका सहज उत्तर यह है कि 30 दिनों के महीनों को जोड़ तोड़ कर किसी किसी को 31 दिन का बना दिया जाता है और वर्ष 365 दिनों का हो जाता है।"

"श्रीमान ! कृपया यह भी बतायें कि फरवरी माह क्यों 28 दिनों का होता है ? कभी कभी तो यह 29 दिनों का हो जाता है। कृपया यह भी बताने की कृपा करें कि जुलाई और अगस्त माह लगातार 31-31 दिनों के क्यों हो जाते हैं जबकि अन्य महीने 30-31 के क्रम में होते हैं ? इन सबके पीछे कौन सी बात हो सकती है ?"

"जहाँ तक मैं जानता हूँ कि यूरोपियन व्यवस्था में भी दिसंबर का महीना दसवाँ महीना था। इसे लोग 'X मास' भी कहते हैं जो रोमन में दस संख्या का संकेत चिह्न है। मार्च महीना उनका प्रथम माह था ही। ऐसा कई जगह स्पष्टीकरण भी मिलता है।

"अब पृथ्वी की गति की जानकारी भी तुम्हें कुछ दूं। पृथ्वी सूर्य के चारों और घूमती है जरूर किंतु उसका पथ अंडाकार है। यह अंडाकार पथ इस प्रकार है कि पृथ्वी की स्थिति 21 मार्च से लेकर 21 सितंबर तक जिस मार्ग तक पहुंचती है वह मार्ग कुछ लंबा है तथा 21 सितंबर से 20 मार्च तक का पथ कुछ छोटा है। इन्हें क्रमशः उत्तरायण और दक्षिणायण भी कहा जाता है। उत्तरायण के समय को अपसौरिका (Aphelion) और दक्षिणायण के समय को उपसौरिका (Perihelion) कहा जाता है। अपसौरिका का काल 184 दिनों का होता है। अर्थात पृथ्वी को 21 मार्च से 21 सितंबर तक की स्थिति में पहुँचने के लिए 184 दिन चलना पड़ता है जबकि उपसौरिका का काल 181 दिनों का होता है," यह कहकर वैज्ञानिक एक चित्र

बनाने लगे ।

"अब आगे समझो," उन्होंने पुनः कहना शुरु किया, "21 मार्च से 20 सितंबर तक के 6 महीनों को 30-30 दिनों के हिसाब से बाँटने पर कुल 180 दिन ही होते हैं, जबकि इन महीनों में कुल 184 दिनों को विभाजित करना है। अतः मार्च से प्रारंभ कर क्रमशः मई, जुलाई को 31-31 दिनों का बनाया गया जो मार्च के बाद क्रमशः 31-30 के क्रम में हैं। किंतु मार्च से अगस्त तक इस क्रम में कुल दिनों को जोड़ने से एक दिन अधिक हो जाता है जिसे इस संपात के अंतिम माह अगस्त में जोड़ दिया गया। इस प्रकार यह औपसारिका 184 दिनों का हुआ और जुलाई-अगस्त दोनों 31-31 के हुए।

"अब 21 सितंबर से 20 मार्च तक के उपसौरिका काल में 181 दिन ही होते हैं जिसे छः महीनो में 30-30 के क्रम में विभाजित करने पर 180 दिन होते हैं। एक दिन जो अधिक होता है उसे इस संपात के प्रथम माह सितंबर को छोड़कर (क्योंकि अगस्त अब 31 दिनों का है) अक्टूबर को 30-31 के क्रम में लाने के लिए 31 का बनाना था अतः अंतिम माह फरवरी (इस संपात का) से एक एक दिन लेकर दिसंबर में जोड़ा गया और उसे 31 का बना दिया गया। बाद में जब जनवरी को प्रथम माह घोषित किया गया तो उसे महत्वपूर्ण बनाने के लिए फरवरी से पुनः एक दिन घटा कर इसमें जोड़ दिया गया। इस प्रकार फरवरी के पास अब 28 दिन ही बच गये। फरवरी से ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि वह अंतिम माह है। समझ रहे हो ?"

"हाँ, अच्छी तरह समझ रहा हूँ। किंतु फरवरी 29 दिनों का भी तो होता है ?"

"हाँ, होता है। वस्तुतः सूर्य की परिक्रमा पृथ्वी 365 दिनों में ही नहीं बल्कि 365 1/4 दिनों में पूरी करती है। प्रतिवर्ष यह 1/4 दिन बचता रहता है जिसे चार वर्षों में जोड़कर एक दिन अधिक बना दिया जाता है। यह एक दिन फरवरी को ही दे दिया जाता है क्योंकि कटौती तो उसी से की गयी थी। इस वर्ष को 'लीप इयर' कहते हैं।"

"अब मुझे सभी प्रश्नों के उत्तर समझ में आ चुके हैं," युवक कुर्सी से उठते हुए बोला।

टिफिन का डिब्बा खाली हो चुका था। उसे पृथ्वी पर पहली बार स्वादिष्ट भोजन का आनंद मिला था, साथ ही यह भी पहली बार अनुभव हुआ था कि यहाँ के विज्ञान अवलंबी इतना गहन अध्ययन करते हैं। वैज्ञानिक को धन्यवाद व प्रणाम कर वह सीधे समुद्र तट पर चला गया जहाँ पृथ्वी अस्ताचल गामी सूर्य को प्रतिदिन की भाँति निहार रही थी। चंद्रमा को देखते ही वह पूछ बैठी, "कैसा रहा आज का दिन ? वैज्ञानिक ने कुछ बताया तुम्हें ?"

"हाँ, दीदी ! बहुत कुछ बताया उन्होंने। किंतु मुझे ऐसा लगा कि हमारे और तुम्हारे बारे में ये लोग बहुत कुछ बता सकते हैं। मुझे तो इच्छा हो रही है कि मैं यहीं रह जाऊं और रोज उस वैज्ञानिक से मिलूं। कभी-कभी सोचता हूँ किसी विश्वविद्यालय में प्रवेश ही ले लूँ।" तभी चंद्रमा की नजर समुद्र तट पर उपस्थित अपार जनसमूह पर पड़ी चंद्रमा कौतुहल वश पूछ बैठा, "इतनी भीड़ यहाँ क्यों है दीदी ?"

"आज एक जनवरी है। इस दिन काफी लोग यहाँ 'पिकनिक' मनाने आते हैं। दिन भर बाल-बच्चों के साथ खाते-पीते मौज-मस्ती करते हैं, आनंद मनाते हैं और शाम को चले जाते हैं। वैसे तो इस समुद्र तट में रोज ही ऐसा दृश्य रहता है किंतु आज के दिन कुछ अधिक ही रहता है," पृथ्वी बोली।

'काश ! मैं भी इसी तरह उल्लास मनाता !' चंद्रमा ने मन ही मन सोचा तो पृथ्वी मुस्करा पड़ी। यह कोई नयी बात नहीं थी पृथ्वी के लिए। यहाँ जो भी आया है वह बार-बार आने की इच्छा लेकर ही गया है। चाहे ऋषि हों, मुनी हों या देवता हों सभी पृथ्वी पर जन्म लेने के लिए तरसते रहते हैं। पृथ्वी चंद्रमा से बोली, "अब यह वर्ष तो बीत गया। आगामी वर्ष तुम्हें नववर्ष के दिन जरुर बुला लूँगी। अब तुम्हें जाना चाहिए। वह देखो सूर्यास्त हो चुका है। अपने काम पर जाओ। कितनी आँखें तुम्हें ढूँढ रही होंगी।"

चंद्रमा पुनः आने की बात कह कर वापस लौट गया और पृथ्वी भी अपनी कक्षा में चली गयी।

❑❑❑

1. हीलियम में अतितरलता की खोज

डॉ. गिरीश चंद्र (एमरिटस प्रोफेसर),
भौतिक विभाग, आई. आई. टी.,
पवई, मुंबई - 400 076.

डेविड एम. ली, डगलस डी. ओशेराफ और राबर्ट सी. रिचर्डसन को 1996 के भौतिक शास्त्र का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया है । यह पुरस्कार ^{3}He में अतितरलता (Superfluidity) की खोज के लिए दिया गया है । इन वैज्ञानिकों ने अमरीका के कॉर्नेल विश्वविद्यालय की निम्नताप भौतिकी की प्रयोगशाला में 1970 के आस पास प्रयोगों से यह पहली बार सिद्ध किया था कि 3 मिलीकेल्विन (मिके.) के नीचे तरल ^{3}He में तीन नयी प्रावस्थाएं हैं जिनके गुण सामान्य प्रावस्था से बहुत भिन्न हैं । इन तीनों नयी प्रावस्थाओं में तरल ^{3}He अतितरल है जिसका अर्थ है कि इस के बहाव में श्यान्यता (Viscosity) एकदम शून्य है । इसके साथ साथ यह चुंबकीय भी हैं । इनका व्यवहार एनाइसोट्रॉपिक (anisotropic) है अर्थात इनके गुण दिशा पर निर्भर रहते हैं । यह तरल पदार्थ एक नये प्रकार का क्वांटम व्यवहार करता है जिसे हम मैक्रोस्कोपिक स्केल पर देख सकते हैं। इसके गुण द्रव मणिभ से भी मिलते-जुलते हैं ।

1960 के पहले वैज्ञानिकों ने ^{3}He में अतितरलता की संभावना की भविष्यवाणी कर दी थी । 1960-70 के दशक में बहुत से प्रयोग किये गये जिसमें ^{3}He में अतितरलता को खोजने का प्रयत्न किया गया, लेकिन सभी प्रयोग असफल रहे और वैज्ञानिक बहुत निराश हो चुके थे । उस समय की तकनीकों से जो भी निम्नतापक्रम संभव था उस पर ^{3}He में अतितरलता नहीं दिखायी दी । जैसे-जैसे निम्नतापिकी तकनीक में विकास हुआ और जब ^{3}He को 3 मिके. के नीचे ठंडा किया जा सका तभी यह आश्चर्यजनक गुण दिखायी पड़ा । यह अत्यंत ही जटिल और कठिन तकनीक है और उस समय बहुत ही कम प्रयोगशालाओं में यह संभव था ।

प्रो. डेविड ली

ली तथा रिचर्डसन दोनों प्रोफेसर थे और ओशेराफ पीएच. डी. के एक विद्यार्थी । प्रो. ली ने अमरीकी फौज में काम किया था । 1952 में हार्वर्ड विश्वविद्यालय से बी. ए. पास किया, 1955 में कनेक्टिकट विश्वविद्यालय से एम. एस. की और 1959 में येल विश्वविद्यालय से पीएच. डी. की उपाधियां प्राप्त कीं । उसके बाद कॉर्नेल विश्वविद्यालय में काम करना शुरु किया और अब भी वहीं हैं । 1968 में भौतिक शास्त्र के विभाग में प्रोफेसर बने ।

राबर्ट रिचर्डसन ने वर्जीनिया पॉलीटैक्निक इंस्टिट्यूट से 1960 में एम. एस. किया और 1966 में ड्यूक विश्वविद्यालय से पीएच. डी. की डिग्री प्राप्त की । 1967 में वह कॉर्नेल विश्वविद्यालय में भौतिक शास्त्र के सहायक प्रोफेसर बने और 1975 में प्रोफेसर हुए । इस समय वे इसी जगह 'फ्लॉयड आर. न्यूमैन प्रोफेसर ऑफ फिजिक्स' और एटॉमिक तथा सॉलिड स्टेट फिजिक्स की प्रयोगशाला के डायरेक्टर हैं । →

प्रो. रॉबर्ट रिचर्डसन

प्रो. डगलस ओशेरॉफ

→

डगलस ओशेराफ ने 1967 में बी. एस. की डिग्री कैलिफोर्निया से प्राप्त की और 1969 में कॉर्नेल विश्वविद्यालय से एम. एस. किया और वहीं से भौतिक शास्त्र में 1973 में पीएच. डी. की डिग्री प्राप्त की जो ^3He में अतितरलता की खोज पर आधारित थी। 1972 में उन्होंने बेल प्रयोगशाला में काम करना शुरू किया जहाँ वह 1982 में 'ठोस अवस्था तथा निम्नतापिकी विभाग' के प्रमुख बने। 1987 में स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय में भौतिक शास्त्र के प्रोफेसर बने और 1993 से अब तक विभाग के प्रमुख रहे। इस समय वह 'सी. जे. जैक्सन' और 'सी. जे. वुड' प्रोफेसर ऑफ फिजिक्स हैं। ओशेराफ एक असाधारण, धैर्यवान और दूरदर्शी विद्यार्थी थे। आमतौर पर यदि किसी विद्यार्थी को पेन रिकॉर्डर का ट्रेस थोड़ा टेढ़ा मेढ़ा दिखता है तो वह यंत्र की सुग्राहकता को कम कर देता है जिससे वक्र उतार-चढ़ाव रहित (स्मूथ) हो जाता है और सुंदर दिखने लगता है। लेकिन ओशेराफ ने ऐसा नहीं किया। उन्होंने उत्सुकतावश सुग्राहकता बढ़ा दी और वक्र के असामान्य (anomalous) भाग का क्रमबद्ध अध्ययन किया। इसी अध्ययन से अंततः अतितरलता की खोज संभव हो सकी।

यह खोज कोई अचानक नहीं हुई। जैसा ऊपर कहा गया है कि ^3He में अतितरलता की खोज कई वर्षों से हो रही थी। कॉर्नेल विश्वविद्यालय का यह अति निम्नतापक्रम भौतिकी का विभाग कई वर्षों से बहुत प्रसिद्ध था। इसके तीन वैज्ञानिक - प्रोफेसर जान रेप्पी, प्रो. ली और प्रो. रिचर्डसन ने इस प्रयोगशाला को बहुत विकसित किया। इस विभाग के कई विद्यार्थी दूसरी प्रयोगशालाओं, जैसे बेल प्रयोगशाला, में बहुत प्रसिद्ध हुए। ओशेराफ भी यहां के एक विद्यार्थी रह चुके थे। अतितरलता की इस महत्वपूर्ण खोज के लिए ली, रिचर्डसन और ओशेराफ को सबसे पहले 1976 में इंस्टीट्यूट ऑफ फिजिक्स का साइमन स्मारक पुरस्कार मिला। उसके बाद 1980 में अमेरिका की फिजिकल सोसायटी का ऑलिवर ई. बक्ले सॉलिड स्टेट फिजिक्स पुरस्कार दिया गया।

क्या होती है अतितरलता ?

जब हम पदार्थों को ठंडा करते हैं तो पदार्थों के नये नये आश्चर्यजनक गुणों का पता चलता है। इसी अध्ययन का नाम 'निम्नताप भौतिकी' दिया गया है। इस विषय पर कार्य करने वाले कई वैज्ञानिकों को नोबेल पुरस्कार मिल चुका है। निम्न ताप पर दिखने वाले आश्चर्यजनक गुणों में सबसे अधिक प्रसिद्ध है 'अतिचालकता'। इस प्रावस्था में पदार्थ में विद्युत बहाव के लिए प्रतिरोध एकदम शून्य हो जाता है। इस गुण को *बी सी एस* (BSC - Bardeen-Cooper-Shriefer) सिद्धांत के आधार पर समझा जाता है, जिसमें यह कहा जाता है कि इलेक्ट्रॉन - इलेक्ट्रॉन युग्मन (electron-electron pairing) होता है। यह एक S - तरंग युग्मन है अर्थात् $S = 0$, दोनों इलेक्ट्रॉनों के स्पिन एक दूसरे के विपरीत होते हैं और इनमें कोई

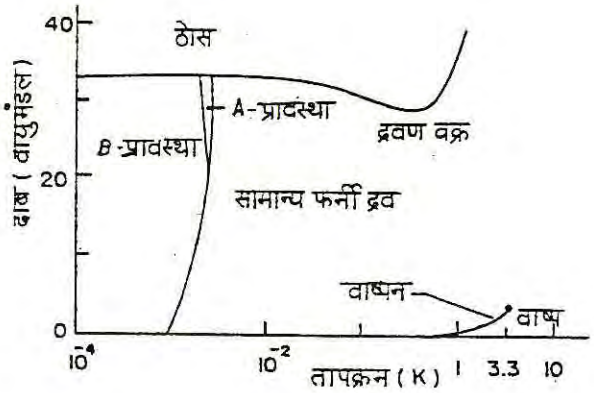

चित्र-1 : ^{3}He का प्रावस्था आरेख

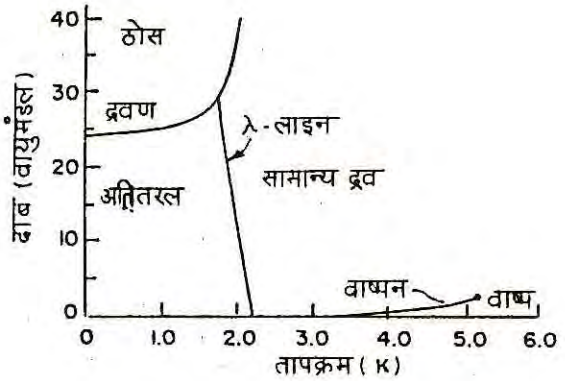

चित्र-2 : ^{4}He का प्रावस्था आरेख

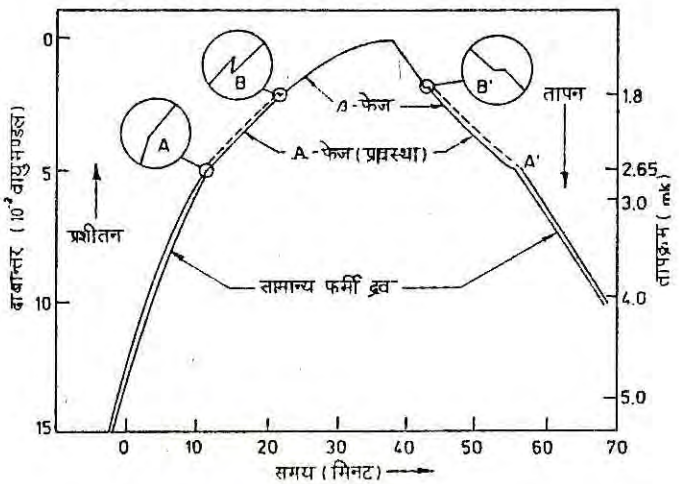

चित्र-3 : 'दाब-समय वक्र' । पमेरान्चुक सेल में कॉर्नेल के प्रयोग में ^{4}He का आयतन एक स्थिर दर पर कम किया गया । इसमें A और B फेज़ संक्रमण तापक्रम कम करते हुए पाये गये जबकि A' और B' तापक्रम बढ़ाते हुए पाये गये । दोहरी लाइनों वाला भाग (═══) सामान्य फर्मी द्रव है, ═══ का भाग A फेज़ का भाग है और शेष भाग B फेज़ का भाग है ।

संरचना नहीं होती है। इसे कूपर युग्मन कहते हैं क्योंकि सर्वप्रथम कूपर नामक वैज्ञानिक ने सुझाव दिया था। ये युग्मित इलेक्ट्रॉन एक बोसॉन की तरह व्यवहार करते हैं, अर्थात इन पर बोस-आइंस्टीन सांख्यिकी लागू होती है। क्वांटम यांत्रिकी के अंतर्गत दो प्रकार की सांख्यिकियां होती हैं - एक फर्मी-डिराक सांख्यिकी और दूसरी बोस-आइंस्टीन सांख्यिकी। फर्मी सांख्यिकी के अनुसार दो फर्मी कण (जैसे इलेक्ट्रॉन, ^{3}He के अणु) एक क्वांटम अवस्था में नहीं रह सकते हैं। ऐसा पॉली के एक्सक्लूजन सिद्धांत के कारण होता है। दूसरी बोस सांख्यिकी के अनुसार, पदार्थ को ठंडा करने पर एक विशेष तापक्रम पर - जिसे संघनन तापक्रम कहते हैं - अधिकतर बोसॉन (जैसे ^{4}He अणु, युग्मित इलेक्ट्रॉन, युग्मित ^{3}He परमाणु) एक आधार अवस्था पर जमा हो जाते हैं और शून्य तापक्रम ($T = 0$ K) पर सभी बोसॉन आधार अवस्था में जमा हो जाते हैं। इसे बोस-आइंस्टीन संघनन कहते हैं। और इस दशा में तरल पदार्थ में अतितरलता के गुण पैदा हो जाते हैं। इस संसार में जितने भी पदार्थों को हम जानते हैं, उनमें केवल दो पदार्थ - ^{3}He और ^{4}He, ही ऐसे हैं जिन्हें चाहे जितना ठंडा किया जाये, तरल बने रहते हैं। इनको ठोस बनाने के लिए अधिक दबाव, लगभग 25 वायुमंडल, की आवश्यकता पड़ती है। इस बात को दोनों पदार्थों के प्रावस्था आरेखों (चित्र 1 व 2) में देखा जा सकता है। शेष सभी पदार्थ ठंडा करने पर ठोस बन जाते हैं और इसी कारण दूसरे पदार्थों में अतितरलता के गुण नहीं देखे जा सकते। ^{3}He और ^{4}He को इसी कारण क्वांटम तरल (फ्ल्यूड) भी कहते हैं, क्योंकि इन्हीं दो तरल पदार्थों में बृहत पैमाने या मैक्रोस्कोपिक स्केल पर क्वांटम सांख्यिकी का प्रभाव हम देख सकते हैं। इसी कारण इन दोनों पदार्थों में बहुत से असाधारण गुण मौजूद हैं। इनको खोजना अनुसंधान के लिए बहुत ही रोचक विषय बना हुआ है, और अगले कई वर्षों तक इस पर अनुसंधान चलता रहेगा।

^{4}He में अतितरलता की खोज 1938 में हुई थी। सर्वप्रथम 1908 में हीलियम गैस को तरल बनाया जा सका, उसके 30 वर्षों के बाद इसमें अतितरलता का पता चला। मास्को के फिजिकल प्राबलेम्स संस्थान के वैज्ञानिक पीटर कैपिट्ज़ा और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक जैक एलेन और डानल्ड माइसनर ने इस गुण की खोज 2.2 K के तापक्रम पर की। इसका नोबेल पुरस्कार कैपिट्ज़ा को 50 वर्षों बाद मिला।

अति निम्नतापिकी तकनीक :

पिछले 20 वर्षों में अति निम्नताप पाने की तकनीक में असाधारण विकास हुआ है। इन तकनीकों से कुछ पदार्थों को मिलीकेल्विन (मिके.) और कुछ को माइक्रोकेल्विन (माके.) तक ठंडा कर के उनके गुणों का अध्ययन किया जा सकता है। यहाँ हम इन तकनीकों का संक्षिप्त विवरण देंगे।

1. ^{3}He + ^{4}He विरलीकरण (dilution) रेफ्रीजरेटर

इस तकनीक में ^{3}He और ^{4}He के मिश्रण के कुछ विशेष गुण ऐसे हैं जिसके आधार पर यदि हम ^{3}He को बंद चक्र में प्रवाहित करें तो धीरे धीरे इस मिश्रण का तापक्रम घटते घटते आमतौर पर 10 मिके. तक पहुंच जाता है और कुछ विशेष निम्नतापकों (रेफ्रीजरेटर) में 2 मिके. तक पहुंचा जा सकता है। यह एक बहुत ही शक्तिशाली और उपयोगी तकनीक है और यह बहुत सी प्रयोगशालाओं में मौजूद है। जहां भी अति निम्नतापक्रम की आवश्यकता होती है, वहाँ इस को पूर्वशीतलक (precooler) की तरह इस्तेमाल करते हैं, फिर दूसरी तकनीक की सहायता से और अधिक निम्नतापक्रम तक पहुंचते हैं।

2. नाभिकीय शीतलन - नाभिकीय स्पिन का स्थिरोष्म विचुंबकीकरण (Adiabatic Demagnetisation)

स्थिरोष्म विचुंबकीकरण की प्रक्रिया बहुत प्रचलित और बहुत पुरानी है। पहले यह तकनीक अनुचुंबकीय लवण पर लागू करके 10 मिके. के आसपास का तापक्रम प्राप्त किया जाता था। लेकिन इसकी शीतलन शक्ति बहुत कम थी, और तापक्रम बहुत जल्दी बढ़ जाता था। लेकिन जब ^{3}He + ^{4}He विरलीकरण निम्नतापक का विकास हुआ तो नाभिकीय शीतलन की प्रक्रिया को ताँबे के नाभिकों पर लागू करके 20 से 100 माके. तक अति निम्नतापक्रम प्राप्त किया जा सका। और अब इसे ^{3}He को ठंडा करके उसके गुणों का अध्ययन कई प्रयोगशालाओं में हो रहा है।

3. पॉमेरान्चुक शीतलन

सर्वप्रथम एक रूसी सैद्धांतिक भौतिकशास्त्री इज़ाक पॉमेरान्चुक ने इस प्रक्रिया का सुझाव दिया था । यह सिद्धांत इस गुण पर आधारित है कि 300 मिके. के तापक्रम के नीचे ठोस ^{3}He के स्पिन एन्ट्रॉपी की अपेक्षा तरल ^{3}He की एन्ट्रॉपी कम है । इसलिए जब हम तरल ^{3}He पर दबाव डाल कर स्थिरोष्म संपीडन करते हैं तो कुछ तरल ^{3}He ठोस ^{3}He में परिवर्तित हो जाता है और इसके परिणामस्वरूप इस मिश्रण का तापक्रम बहुत कम हो जाता है और इसे 2 मिके. से नीचे तक ठंडा किया जा सकता है । ^{3}He के प्रावस्था के आरेख में इसे देख सकते हैं । इस वक्र को ^{3}He का द्रवण वक्र कहते हैं । ओशेराफ ने इसी का इस्तेमाल ^{3}He के अध्ययन में किया । इस तकनीक का विशेष लाभ यह है कि ^{3}He और किसी प्रशीतलक के साथ किसी ऊष्मीय संपर्क की आवश्यकता नहीं पड़ती है । यहाँ ^{3}He स्वयं एक प्रशीतलक की तरह काम करता है ।

अतितरल ^{3}He के अध्ययन की तकनीक अत्यंत जटिल और कठिन होने के कारण केवल विश्व की केवल चार या पांच प्रयोगशालाओं में ही इस पर अनुसंधान हो रहा है । उदाहरण के लिए हेल्सिन्की टेक्निकल युनिवर्सिटी में प्रो. लूनाज्मा का ग्रुप है, कॉर्नेल विश्वविद्यालय में प्रो. रिचर्डसन का ग्रुप, इंस्टिट्यूट ऑफ फिजिकल प्रॉबलम्स, मास्को में प्रो. बरोविक रमानव का ग्रुप, युनिवर्सिटी ऑफ लेन्केस्टर, इंग्लैंड में प्रो. पिकेट का ग्रुप है । इन प्रयोगशालाओं में तकनीक इतनी विकसित हो चुकी है कि 100 माइक्रोकेल्विन के तापक्रम तक ^{3}He का अध्ययन हो रहा है । यहाँ आवर्ती (Rotating) ^{3}He पर भी प्रयोग हो रहे हैं जिनसे कई नये गुणों का पता चला है ।

ओशेराफ का प्रयोग :

अब हम उस प्रथम प्रयोग की बात कर सकते हैं जिससे ^{3}He में अतितरलता की खोज हो सकी । ली, रिचर्डसन और ओशेराफ का ध्येय ^{3}He को पॉमेरान्चुक के सुझाव के अनुसार ठंडा करके यह देखना था कि कम से कम इस तकनीक से कितना तापक्रम प्राप्त किया जा सकता है । तापक्रम नापने के लिए इन्होंने एन. एम. आर. तकनीक का प्रयोग किया । इन सारे अध्ययनों में एन. एम. आर. तकनीक बहुत अधिक महत्वपूर्ण साबित हुई ।

इस प्रयोग में ^{3}He का आयतन एक स्थिर दर पर कम किया गया, लेकिन इससे जो दाब-समय वक्र मिला वह एकसमान नहीं था । इसमें 2 मिके. के आसपास दो असामान्यताएं पायी गयीं जो हर प्रयोग में पुनः-पुनः प्राप्त हुईं (चित्र-3) । यहाँ ओशेराफ की सोच बहुत महत्वपूर्ण साबित हुआ । ओशेराफ को उत्सुकता हुई कि यह क्या है और उन्होंने उसका विस्तार से अध्ययन किया। इस प्रयोग से प्राप्त दाब-समय वक्र चित्र-3 में दिखाया गया है । इसमें पूरा शीतलन या तापन चक्र (cooling or warming cycle) है जिसमें A और B प्रावस्था संक्रमण ठंडा करने पर और A' और B' गर्म करने पर देखे गये । इस चित्र में फर्मी द्रव का भाग, A-प्रावस्था का भाग और B-प्रावस्था का भाग दिखाया गया है । A और A' पर ढाल (slope) बदल गया है । यहाँ पर तरल ^{3}He में विशिष्ट ऊष्मा में उछाल (jump) देखा गया है । B और B' पर B से A प्रावस्था संक्रमण प्रथम-क्रमीय है और सामान्य ^{3}He से अतितरल A-प्रावस्था एक द्वितीय क्रम का प्रावस्था संक्रमण है । इसमें ठोस ^{3}He एक प्रति चुंबक (antiferromagnet) है । प्रारंभ में इन वैज्ञानिकों ने अतितरलता के विषय में नहीं सोचा था । इनके पहले शोधपत्र का शीर्षक था :

"Evidence for a new solid phase of ^{3}He"

इसके बाद बहुत सारे प्रयोग हुए । यहाँ एक कठिनाई सामने आयी । वह यह थी कि इन प्रयोगों में ठोस ^{3}He और तरल ^{3}He दोनों मौजूद थे और एन. एम. आर. संकेत दोनों ^{3}He से मिल रहे थे । दोनों संकेतों को अलग करना एक कठिन समस्या थी, लेकिन जल्दी ही इसका हल मिल गया । और यह सिद्ध किया गया कि ये दोनों प्रावस्था संक्रमण A और B तरल ^{3}He में ही हुए हैं । इसमें एन. एम. आर. आवृति में बहुत अधिक शिफ्ट देखी गयी जो तापक्रम पर भी निर्भर थी । यह एक आश्चर्यजनक खोज थी । चुंबकीय क्षेत्र लगाने पर A-प्रावस्था दो प्रावस्थाओं विभाजित हो जाती है - A और A1 । इसके बाद ^{3}He

(कृपया शेष भाग पृष्ठ -63 पर देखें)

2. कोशिका द्वारा मध्यस्थ प्रतिरक्षण (इम्यून) प्रणाली की सुरक्षा विशिष्टता की खोज

डॉ. कृष्णा बी. सैनीस,
प्रतिरक्षण प्रभाग, कोशकीय जैविकी
अनुभाग, भा. प. अ. केंद्र, ट्रॉम्बे, मुंबई - 400 085.

अनुसंधान के क्षेत्र में अक्सर यह पाया जाता है कि अति महत्वपूर्ण सिद्धांत या खोज का सामने आना संयोग से होता है। किसी अन्य उद्देश्य से शुरु किये गये प्रयोगों से किसी अन्य मूलभूत सिद्धांत का पता चलता है। 1996 के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित शरीर क्रिया विज्ञान और चिकित्सा के क्षेत्र में डॉ. पीटर डोहर्टी और डॉ. रोल्फ जिंकर नागल ने कोशिका मध्यस्थ (mediated) प्रतिरक्षण की विशिष्टता के संबंध में ऐसी ही एक मूलभूत संकल्पना का प्रमाण दिया।

हमारे शरीर की प्रतिरक्षण प्रणाली (immune system) जंतु विरोधी क्षमता प्रदान करने में अहम् भूमिका निभाती है। यह प्रतिरक्षण दो प्रकार का होता है। एक तो हर परजीव या परघटक के विरुद्ध प्रतिजन विशिष्ट (antigen specific) प्रतिपिंड या एन्टीबॉडीज बनती है जिन्हें बी-लिंफोसाइट्स बनाती हैं। दूसरे प्रकार में उद्दीपित टी-लिंफोसाइट्स शोथकारी (inflammation) या कोशिका विनाशी (cytotoxic) प्रतिरक्षण निर्माण करती है। कोशिका विनाशी टी-कोशाएं (cytotoxic T cells -Tc) प्रतिरोपित कोशाएं या अवयवों को तथा संक्रमित निजी कोशाओं (virus infected own cells) को भी नष्ट करती हैं। साथ ही साथ स्मृति कोशिकाओं का निर्माण होता है जो प्रतिजन के पुनर्संपर्क से शीघ्र और अधिक मात्रा में प्रतिरक्षण निर्माण करने में सहायक होती हैं। इन सभी प्रक्रियाओं में प्रतिजन की पहचान या अभिज्ञान अत्यावश्यक है। इस पहचान क्रिया के सिद्धांतों की खोज करने के लिए ही 1996 का नोबेल पुरस्कार दिया गया है।

चूहों में मस्तिष्क शोथ लिंफोसाइट कोरिओ-मेनिन जाइटिस विषाणु (lymphocyte chorio-meningitis virus) के संक्रमण से होता है। जब यह विषाणु रक्त

डॉ. रोल्फ जिंकर नागल

52 वर्षीय डॉ. जिंकरनागल का जन्म बासेल, स्विट्जरलैंड में हुआ था। आपने अपने जन्म स्थान तथा कैनबेरा, ऑस्ट्रेलिया में शिक्षा प्राप्त की। 1970 में बासेल विश्वविद्यालय स्विट्जरलैंड से एम. डी. की उपाधि प्राप्त की। एम. डी. के बाद कुछ दिन एक सर्जन के सहायक के रूप में काम करने के बाद बैक्टेरिया विरोधी प्रतिरक्षण पर कार्य प्रारंभ किया। प्रसिद्ध प्रतिरक्षण वैज्ञानिक डॉ. गॉर्डन एडा (ऑस्ट्रेलिया) के साथ पेरिस में एक संगोष्ठी के दौरान मुलाकात हुई। आपकी प्रतिभा से प्रभावित होकर उन्होंने आपको अपने संस्थान में पीएच. डी. करने का निमंत्रण दिया। 1973-75 के दौरान जॉन कर्टिन स्कूल ऑफ मेडिकल रिसर्च कैनबेरा में ऐसा अनुसंधान कार्य किया जिससे उस क्रियाविधि (मैकेनिज्म) को समझने में सहायता मिली जिससे मानव अपने शरीर में बाह्य पदार्थों को पहचानता है और उनके विरुद्ध प्रतिरक्षण निर्माण होता है। भिन्न स्वभाव होने के बावजूद भी आपने डॉ. डोहर्टी के साथ कैनबेरा में यह अनुसंधान कार्य किया। आजकल जुरिच विश्वविद्यालय (जर्मनी) में प्रायोगिक प्रतिरक्षण संस्थान के आप प्रमुख हैं।

→

→

डॉ. पीटर डोहर्टी

55 वर्षीय डॉ. पीटर डोहर्टी का जन्म ऑस्ट्रेलिया में हुआ था। आपने अपने कैरियर की शुरुआत ब्रिस्बैन के पशु अनुसंधान संस्थान में एक वेटेरिनरी ऑफीसर की हैसियत से की। यहां आने से पूर्व आपकी शिक्षा क्वीन्सलैंड विश्वविद्यालय ऑस्ट्रेलिया तथा पीएच. डी. की उपाधि एडिनबर्ग विश्वविद्यालय से प्राप्त की। आजकल आप सैंट ज्यूड चिल्ड्रन रिसर्च हॉस्पिटल, मैंफिस (टेनेस्सी, अमरीका) में इम्यूनोलॉजी विभाग के अध्यक्ष तथा युनिवर्सिटी ऑफ टेनेस्सी कॉलेज ऑफ मेडिसिन में प्रोफेसर हैं। चूहों में होने वाले मस्तिष्क शोथ पर आपने कार्य किया।

कोशाओं, लीवर तथा अन्य कोशाओं में रहते हैं तो एक अति सौम्य बीमारी का निर्माण करते हैं। लेकिन जब वे मस्तिष्क को संक्रमित करते हैं तो शोथकारी व्याधि उत्पन्न करते हैं। विभिन्न जाति के चूहों में इन विषाणुओं के कारण निर्मित व्याधि की मात्रा में कुछ भिन्नता पायी गयी थी। डॉ. जिंकर नागल और डॉ. डोहर्टी ने एक साधारण प्रश्न किया कि क्या इस शोथकारी व्याधि की तीव्रता इस विषाणु के विरोध में निर्माण होने वाले प्रतिरक्षण के स्वरूप और मात्रा पर निर्भर है ? जब उन्होंने विनाशकारी कोशिकाओं (Tc) की मात्रा नापकर उसका इस व्याधि की तीव्रता से संबंध जानने का प्रयास किया तो उन्हें एक ऐसा 'रहस्य' पता चला जो आज एक सर्वमान्य सिद्धांत बन गया है - टी - कोशाओं द्वारा प्रतिजनों का अभिज्ञान प्राप्त करने का। इस खोज से यह सिद्ध हुआ कि टी-कोशाएं वायरस के या अन्य परघटकों को निजी प्रमुख ऊतक (Tissue) अनुकूल अणुओं (Major histocompatibility Complex - MHC proteins) को संलग्न रूप से पहचानती हैं। प्रतिजन और निजी एम. एच. सी. के संयुक्तों की पहचान टी-कोशाओं की कार्यप्रणाली का पहला चरण है। यह उन्हें कैसे पता चला ?

जिस क्रिया विधि से उन्होंने Tc की मात्रा निश्चित की वह चित्र-1 में दर्शायी गयी है। उसके अनुसार Tc का निर्माण करने के लिए चूहों को मस्तिष्क में LCMV से संरोपित किया गया। यह Tc कोशिकाएं प्लीहा (spleen) या अन्य लिंफोइड अंगों में पायी गयीं। निजी कोशिकाओं (जैसे fibroblast) की शरीर बाह्य विधि (*in vitro* culture) से वृद्धि की गयी। उन्हें वायरस के साथ रखकर संक्रमित किया गया। इस तरह से LCMC द्वारा संक्रमित लक्ष्य कोशाएं बनायी गयीं और उन्हें क्रोमियम के रेडियोधर्मी आइसोटोप (Cr-51) से अनुरेखित किया गया। जब ये अनुरेखित लक्ष्य कोशाएं और Tc को विविध अनुपात में एक साथ उष्मायित (incubate) किया गया तो लक्ष्य कोशाओं का विनाश होकर Cr-51 आइसोटोप बाहर आया। इस Cr-51 की मात्रा नापने से लक्ष्य कोशाओं में क्षति की मात्रा परिमाणित की गयी (चित्र-1)।

इस विधि से डॉ. जिंकर नागल और डॉ. डोहर्टी ने अगस्त 1973 में विभिन्न जाति के चूहों पर प्रयोग किये। लेकिन परिणाम अपेक्षानुरुप नहीं आये। इसका आधार जानने लिए उन्होंने विभिन्न जाति के चूहों को LCMV से मस्तिष्क में संरोपित किया और सात दिन बाद उनके लिंफोसाइट्स को जब C3H जाति के चूहे से प्राप्त फाइब्रोब्लास्ट (L 929 cells) लक्ष्य कोशाओं के साथ उष्मायित किया तो उन्हें पता चला कि Tc कोशिकाएं केवल उन्हीं वायरस संक्रमित लक्ष्य को नष्ट करती हैं जिनसे उनकी ऊतक अनुकूल अणुओं के बारे में समान धर्मता (same MHC molecules on effector and target cells) है। इन निष्कर्षों को तालिका-1 में दिया गया है। C3H, CBA, AKR जाति के चूहों में $H\text{-}2^k$ प्रकार के MHC जीन और प्रोटीन पाये जाते हैं।

तालिका 1 : लिंफोसाइट कोरिओ मेनिनजाइटिस वायरस से मस्तिष्क में इन्जेक्शन से विभिन्न जाति के चूहों में स्प्लीन कोशिकाओं की विनाशी (cytotoxic) सक्रियता

प्रयोग सं	चूहों की जाति (LCMV प्रतिरक्षित)	एम. एच. सी. (H-2)	C3H ($H-2^k$) फाइब्रोब्लास्ट लक्ष्य कोशाओं से Cr-51की निर्मुक्ति (%)	
			संक्रमित लक्ष्य	सुदृढ़ लक्ष्य
1.	CBA/H	$H-2^k$	***63.1 ±3.3***	17.2 ± 0.7
	BALB/	$H-2^d$	17.9 ± 0.9	17.2 ± 0.6
	C57BL/6	$H-2^b$	22.7 ± 1.4	19.8 ± 0.9
	(CBA/H x C57BL/6)F_1	$H-2^{k/b}$	***56.1 ±0.5***	16.7 ± 6.3
2.	CBA/H	$H-2^k$	***85.5 ±3.1***	20.9 ± 1.3
	AKR	$H-2^k$	***71.2 ±1.6***	18.6 ± 1.2
3.	CBA/H	$H-2^k$	***77.9 ±2.7***	25.7 ± 1.3
	C3H/HeJ	$H-2^k$	***77.8 ±0.8***	24.5 ± 1.5

नोट : मोटे और तिरछे टाइप में छपी संख्याएं लक्षणीय विनाशी सक्रियता दर्शाती हैं।

BACB/c चूहों में $H-2^d$ प्रकार के MHC होते हैं तथा C57BL/6 में $H-2^b$ प्रकार के। अतएव C3H, CBA और AKR जाति के चूहों से प्राप्त Tc कोशिकाएं, C3H के लक्ष्य कोशाओं का विनाश कर सकीं। $H-2^k$ के अलावा अन्य MHC प्रकार के चूहों के Tc कोशाओं से यह संभव नहीं हुआ (तालिका-1)। न तो असंक्रमित सुदृढ़ कोशिकाओं का विनाश हुआ भले ही वे Tc के ही MHC प्रकार की क्यों न हों। इस परिणाम को कोशिकाओं द्वारा मध्यस्थ कोशिका विनाश में एम. एच. सी. प्रतिबंध (MHC restriction of cell mediated cytotoxicity) के नाम से जाना जाता है।

यह MHC है क्या ? चूहों में 17 क्रमांक के गुण-सूत्र (chromosome) और मानव में 6 क्रमांक के गुणसूत्र पर यह जीन समूह पाया जाता है। MHC जीन्स द्वारा निर्मित प्रोटीनों को MHC एंटीजन कहा जाता है। प्रत्यारोपित अवयवों के निष्क्रीयकरण का प्रमुख आधार MHC की प्रतिकूलता है। मनुष्य में इन्हें Human Leucocyte Antigen - HLA तथा चूहों में H-2 कहा जाता है। MHC प्रोटीनों के तीन वर्ग होते हैं जिनमें से MHC वर्ग-I और MHC वर्ग-II के अणु कोशाओं के पृष्ठभाग (तल) पर पाये जाते हैं। वर्ग-I के अणु लगभग सभी कोशाओं पर स्थित होते हैं। वर्ग-II के अणु कुछ विशिष्ट कोशाओं पर होते हैं जैसे मैक्रोफाजिस, डेंड्रिटिक कोशाएं, लैंगरहैन कोशाएं और बी-लिंफोसाइट्स। MHC अणुओं की अन्य दो विशेषताएं हैं। ये बहुमूलक (polygenic), अर्थात् अनेक जीनों से बने हुए होते हैं और बहुरूपी (polymorphic) होते हैं। MHC जितनी बहुरूपता अन्य जीनों में नहीं दिखायी देती। हर व्यक्ति में MHC के हर जीन के दो पर्यायी (alleles) रूप होते हैं जो उसे अपने माता और पिता से प्राप्त होते हैं। मानव में MHC वर्ग-I अणुओं में HLA-A, HLA-B, HLA-C - आदि अणु होते हैं। वर्ग - II के अणुओं को HLA-DR, HLA-DP तथा HLA-DQ द्वारा अभिज्ञापित किया जाता है। वर्ग - I के अणु दो पेप्टाईड श्रृंखलाओं से बने होते हैं, जिनमें से एक श्रृंखला α बहुरूपी (polymorphic) व दूसरी $\beta 2$ माइक्रोग्लोब्युलिन श्रृंखला अभिन्न (non polymorphic) होती है। वर्ग - II अणुओं की भी α और β श्रृंखलाएं होती हैं जो दोनों बहुरूपी होती हैं। चूहों में वर्ग - I के अणु K, D, L आदि नामों से जाने जाते हैं और वर्ग II के अणु I-A तथा I-E नाम से। MHC जीनों के पूरे समूह को haplotype कहा जाता है। एक व्यक्ति की कोशाओं पर

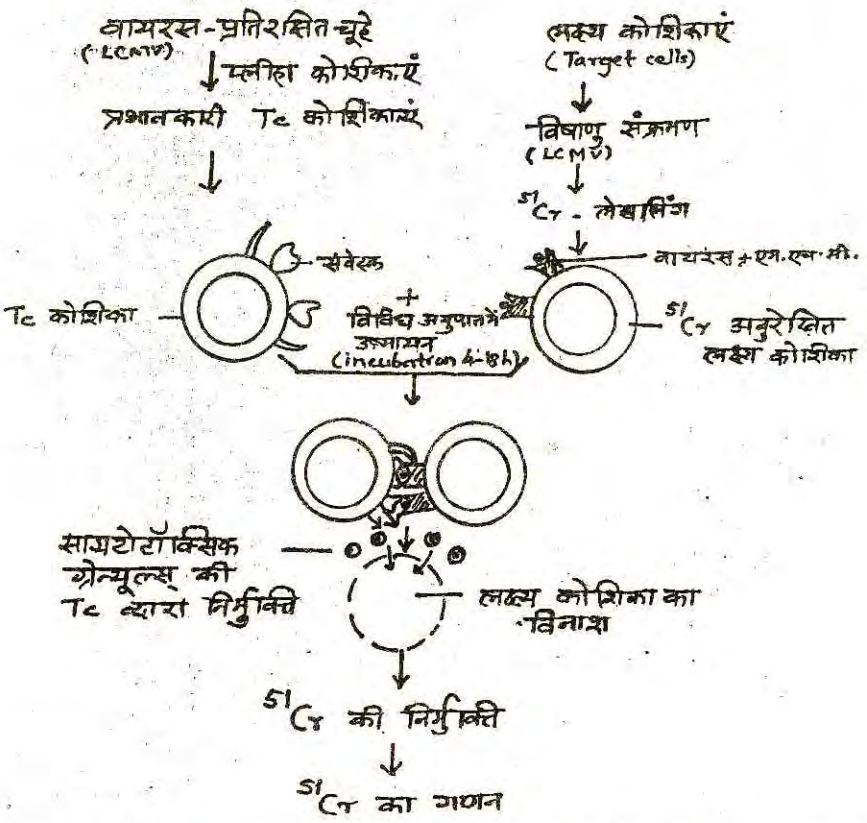

चित्र - 1 : कोशिका विनाशी टी कोशिकाओं की सक्रियता का मापन

माता व पिता दोनों से प्राप्त MHC अणु पाये जाते हैं।

चूहों में ऐसी जातियों का निर्माण संभव हुआ है जिनमें केवल एक या दो MHC जीनों में ही भिन्नता हो, जैसे उत्परिवर्तित व सजातीय (Congenic strains)। ऐसी जाति के चूहों पर प्रयोग कर डॉ. जिंकर नागल और डॉ. डोहर्टी ने सिद्ध किया कि वायरस संक्रमित लक्ष्य कोशाओं के विनाश के लिए Tc और लक्ष्य कोशा में केवल एक ही MHC वर्ग - I (K or D) अणु में समानता होनी चाहिए।

वायरस के प्रतिजनों की निजी MHC अणुओं के साथ पहचान कैसे हो सकती है इसके बारे में डॉ. जिंकर नागल और डोहर्टी ने दो वैकल्पिक प्रतिरूप (मॉडल) प्रस्तुत किये (चित्र-2)। एक मॉडल के अनुसार घनिष्टता संकल्पना (intimacy concept) में आपसी अंतःक्रिया (self-self interaction) से Tc कोशा और लक्ष्य कोशाओं का एक साथ आना संभव है और वायरस के प्रतिजनों को दूसरे ग्राही तथा संवेदकों की सहायता से पहचाना जाता है। वैकल्पिक मॉडल जिसे परिवर्तित स्वरूप संकल्पना (altered self concept) कहा जाता है - उसके अनुसार निजी MHC में वायरस के प्रतिजन संप्रविष्ट हो जाने से नये घटक का निर्माण संभव होता है और यह घटक संवेदकों द्वारा पहचाने जाते हैं (चित्र-2)। जब इन दोनों ने यह विचार रखा तब उनके सहयोगियों में बड़ी गरमा-गरम चर्चा हुई। इस विचार मंथन से अपने तर्क को प्रायोगिक तथा सैद्धांतिक रूप से स्पष्ट करने में उन्हें काफी मदद मिली। उन्होंने अपना पहला

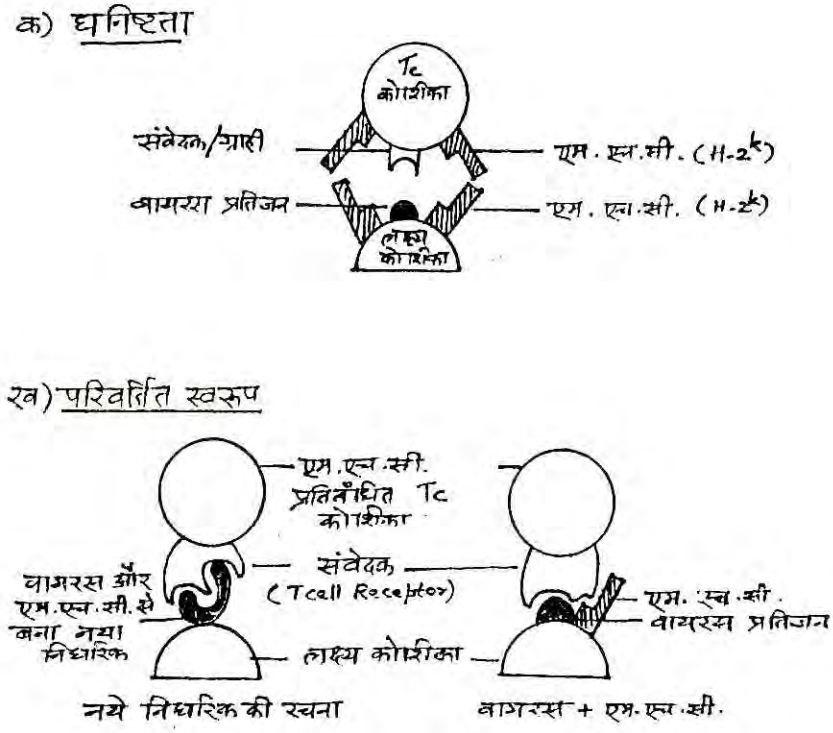

चित्र-2 : घनिष्टता एवं परिवर्तित स्वरूप संकल्पनाएं

शोध-पत्र नेचर पत्रिका को जनवरी 1974 में भेजा जो अप्रेल 1974 में छपा।

परिवर्तित स्वरूप संकल्पना के बारे में काफी दिनों तक यह विवाद रहा कि वायरस तथा निजी MHC को पहचानने वाला ग्राही अणु एक ही है या ये दो हैं ? 1980 तक यह सप्रमाण और निःसंदिग्ध रूप से माना गया कि टी-कोशाओं पर स्थित एक ही ग्राही अणु MHC और प्रतिजन का एक साथ बंधन है और इस अभिज्ञान के साथ अन्य सहउद्दीपक संकेत (Co-stimulatory signals) मिलने से टी-कोशिकाएं उद्दीपित होती हैं।

इस खोज ने आधुनिक प्रतिरक्षण विज्ञान की नींव रखी। पूरे सोच में मानो एक सैद्धांतिक बदलाव (paradigm shift) आया। 1970 के आसपास डॉ. बेनासेराफ, सेला और मैकडेविड आदि ने सिद्ध किया था कि MHC जीनों का प्रतिरक्षण की मात्रा से संबंध है। MHC को प्रतिरक्षण नियामक जीनों (immune response genes) के रूप में देखा जा रहा था। विशिष्ट MHC वर्ग के व्यक्तियों में विशिष्ट रोगों का अधिक प्रमाण मिलने से संबंधित रिपोर्ट छप रहे थे। जिंकर नागल और डोहर्टी ने इस नियामक कार्य की संभाव्य क्रियाविधि को स्पष्ट किया। इसी कार्य काल में स्वतंत्र रूप से और बाद में भी अन्य वैज्ञानिकों ने प्रमाण दिये कि केवल Tc कोशाएं ही नहीं, अन्य टी-कोशाएं (मदद कोशाएं - T helper cells, विलंबित अतिसुग्राहक - delayed hypersensitivity effector T cells) भी इसी MHC संबंधित पहचान तंत्र से कार्य करती हैं। टी-कोशाओं के $CD4^+$ और $CD8^+$ ऐसे दो व्यक्त प्रारूप हैं। $CD4^+$ टी-कोशाएं परस्थ प्रतिजनों को MHC वर्ग-II से संलग्न रूप में पहचानती हैं तो $CD8^+$ टी-कोशाएं MHC वर्ग-I के संलग्न रूप से।

प्रश्न यह उठता है कि प्रतिजन का MHC के अणुओं में संप्रविष्टीकरण कहां और कैसे होता है ? गत 10-15 वर्षों में इस खोज के कारण न केवल MHC और T कोशा संवेदकों की संरचना का पता लगाने की दिशा में प्रेरणा मिली। तत्पश्चात प्रतिजन के प्रक्रमण (antigen processing) और प्रस्तुतीकरण (presentation) की विस्तृत जानकारी भी प्राप्त हुई। अंतस्थ (endogenous) प्रतिजन MHC वर्ग-I के अणुओं के साथ जुड़ते हैं और बहिर्स्थित (extrinsic or exogenous) प्रतिजन MHC वर्ग-II के साथ जुड़ते हैं। यह कार्य एंटिजन प्रेजेन्टिंग कोशाएं करती हैं।

जिंकर नागल और डोहर्टी वायरस के प्रतिजनों का MHC से संलग्न होने का सीधा प्रमाण नहीं दे पाये थे। इसकी पुष्टि, जल्दी ही अन्य वैज्ञानिकों ने की। जब 1987 में सर्व प्रथम हार्वर्ड मेडिकल स्कूल में क्रिस्टलोग्राफी द्वारा MHC वर्ग-I के अणुओं की संरचना का पता चला तो यह स्पष्ट हुआ कि MHC वर्ग-I अणुओं में एक खांचा या जेब (groove or pocket) होती है जिसमें प्रतिजन पेप्टाइड बंधा हुआ होता है। टी-कोशाएं केवल प्रोटीन या पेप्टाइड प्रतिजनों को ही पहचानती हैं। अब उस पेप्टाइड को उस जेब से बाहर निकालना भी संभव हुआ है। इसी प्रकार की संरचना MHC वर्ग II के अणुओं में भी पायी गयी। आण्विक स्तर के इस अनुसंधान ने कोशकीय स्तर पर जिंकर नागल और डोहर्टी द्वारा किये प्रयोगों के अनुमानों की पुष्टि की।

नोबेल पुरस्कार चयन समिति ने अपने मानपत्र में स्पष्ट रूप से कहा है कि इन वैज्ञानिकों के कार्य से चिकित्सा के क्षेत्र में तथा प्रतिरक्षण विज्ञान की मूलभूत संकल्पनाओं पर गहरा प्रभाव पड़ा। व्याधि विरोध वैज्ञानिक अध्ययन को प्रेरणा मिली और प्रतिरक्षण प्रणाली को विशिष्ट दिशा में प्रभावित करना संभव हुआ। प्रतिरोपण निष्क्रीयकरण, कैन्सर, संक्रामक रोग, गठिया (rheumatic diseases), आत्म प्रतिरक्षी व्याधियां (autoimmune diseases) आदि का नियमन करने के नये मार्ग दिखाई दिये। MHC के खांचे में स्थित पेप्टाइड की संरचना का पता चलने से नये टीकों (vaccines) का निर्माण अधिक तेजी से हो सकता है। इन पेप्टाइडों में बदलाव लाकर आत्म-प्रतिरक्षी, शोथकारी व्याधि में कार्यरत टी-कोशाओं पर प्रतिबंध या अंकुश लगाना संभव होगा।

इतने बहुआयामी अनुसंधान के बाद डॉ. डोहर्टी अमरीका गये और डॉ. जिंकर नागल स्वदेश लौटे। विषाणु विरोधी प्रतिरक्षण पर उनका अनुसंधान कार्य चलता रहा। उस समय तक यह माना जाता था कि स्वघटकों को पहचानना प्रतिरक्षण प्रणाली के लिए आत्मघातक है। निजी MHC बद्ध पहचान क्रिया ने इस संकल्पना को गहरा धक्का पहुंचाया। फिर प्रश्न यह उठा कि निजी MHC का अभिज्ञान रखने के साथ साथ आत्म प्रतिरक्षी अनुक्रियाओं को कैसे टाला जा सकता है ? गत 10 वर्षों में इस विषय पर बड़े दिलचस्प और क्रांतिकारी तथ्य सामने आये हैं। डॉ. जिंकर नागल ने भी इस विषय में अनुसंधान को आगे बढ़ाया है।

डॉ. जिंकर नागल और डॉ. डोहर्टी को नोबेल पुरस्कार से पहले भी अन्य अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। इनमें फेलोशिप ऑफ दि ऑस्ट्रेलिएन एकाडेमी ऑफ सायन्सेस, पॉल एहरलिक पुरस्कार और नोबेल पुरस्कार का पूर्वगामनी समझा जाने वाला अमरीका का एल्बर्ट लास्कर चिकित्सा अनुसंधान पुरस्कार भी शामिल है।

इस बात की मुझे खुशी है कि 1982-83 के दौरान डॉ. जिंकर नागल के संपर्क में आने का मौका मिला। प्रतिरक्षण विज्ञान पिछले 50 वर्षों में एक स्वतंत्र और मूलभूत शाखा के रूप में उभर आया है। हर 3-4 वर्षों में इस विषय में मिल रहे नोबेल पुरस्कारों का यह क्रम जारी रहेगा ऐसी मेरी आशा है।

❐❐❐

मानव स्वास्थ्य

बच्चों में शैक्षिक-अयोग्यता सुधार के उपाय व जिम्मेदारियाँ

बालकृष्ण काबरा "एतेश",
11 सूर्या एपार्टमेंट, रिंग रोड,
राणाप्रताप नगर, नागपुर - 440 022

ऐसे कौन से मां बाप होंगे जो अपने बच्चों को खुद से भी अधिक बुद्धिमान, पढ़ा-लिखा, योग्य एवं सफल इन्सान के रूप में न देखना चाहते हों। और ऐसे कौन बच्चे हैं जिनकी आकांक्षाएं किसी से भी कम हों। वे प्रयत्न भी करते हैं परंतु परिणाम उन्हीं के पक्ष में हो बहुधा ऐसा नहीं होता। कुछ होशियार बच्चे भी कभी-कभी बुद्धू या आलसी कहे जाते हैं। ऐसा क्यों? शैक्षिक अयोग्यता के वैज्ञानिक पहलुओं को प्रस्तुत करता है यह सारगर्भित लेख।

आज किसी भी कक्षा में बीस प्रतिशत ऐसे बच्चे मिल जायेंगे, जो पढ़ाई में पीछे होते हैं और उन्हें बहुत ही कम अंक प्राप्त होते हैं। सभी माता-पिता चाहते हैं कि उनके बच्चे उनसे भी अच्छा पढ़ें-लिखें और अच्छे व योग्य इंसान बनें। किंतु यदि परीक्षा में बच्चों को कम अंक मिलें तो यह माता-पिता के लिए निराशा, चिंता और क्रोध का कारण भी बनता है। माता-पिता और शिक्षक इस संबंध में आपस में या डॉक्टरों से शिकायत भी करते हैं। कम अंक प्राप्त करने वाले बच्चों को "बुद्धू" या "आलसी" कहना भी आम बात है इनमें से कुछ बच्चे तो वास्तविक रूप से होशियार होते हैं, फिर भी उन्हें उनके प्रयत्नों के बावजूद अच्छे अंक नहीं मिल पाते। कुछ बच्चों में व्यवहार संबंधी समस्याएं होती हैं और उन्हें अच्छे अंक प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना ही अच्छा नहीं लगता। कुछ बच्चे शारीरिक या तंत्रिकीय कमजोरियों के कारण पर्याप्त रूप से प्रयत्न ही नहीं कर पाते।

वैसे यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि कोई भी बच्चा यह नहीं चाहता कि वह आगे न बढ़े और आलसी कहलाये। यदि उसे अच्छे अंक नहीं मिल पाते हैं तो जरूर वह सीखने संबंधी किसी कठिनाई से ग्रस्त है। अत: छोटे बच्चों की कुशलता में कमी एक ऐसे लक्षण की ओर इंगित करती है, जो भीतर छिपी किसी बड़ी समस्या के कारण है।

वैज्ञानिकों के अनुसार बच्चों में इस प्रकार की अयोग्यता शिक्षा शुरू करने के समय से भी हो सकती है। अथवा बाद में यह बच्चों में छिपे कारणों से या घर, स्कूल आदि के वातावरण के कारण हो सकती है। यदि बच्चों में दृष्टि-दोष हो या सुनने में कठिनाई हो, तो कभी-कभी वे इससे अनभिज्ञ रहकर, यह महसूस करते हैं कि शायद सभी इसी प्रकार से देखते या सुनते हैं। इसके कारण भी उनकी कुशलता पर प्रभाव पड़ता है। समस्या का पता चलने पर और इसका इलाज करने पर उनकी कुशलता बढ़ने लगती है। बच्चों में अयोग्यता बौद्धिक कारणों से भी होती है। कुछ बच्चे खड़े होने, चलने, दौड़ने या बात करने में दूसरों की अपेक्षा धीमे होते हैं। हो सकता है कि ऐसे बच्चों के मस्तिष्क का विकास पर्याप्त रूप से न हुआ हो और उनकी बुद्धि औसत से कम हो। तो वे सीखने में कमजोर होंगे और उन्हें स्कूल में अंक भी कम मिलेंगे। इसके लिए मनोवैज्ञानिकों को उनकी बुद्धि-परीक्षण से यह पता चल सकता है कि बच्चा स्कूल में क्या सीख सकता है और क्या नहीं।

कुछ बच्चे बुद्धिमान होते हुए भी भावनात्मक दृष्टि से अस्थिर हो सकते हैं और पढ़ाई में कमजोर हो सकते हैं। चिंता या तनाव के कारण पढ़ाई के प्रति उनमें अरुचि पैदा हो सकती है। इनमें से कुछ तो उद्दंड भी हो जाते हैं। यदि बच्चों के घर या स्कूल का वातावरण अच्छा

न हो तो यह भी उनकी पढ़ाई पर प्रभाव डालता है। घर या स्कूल का कमजोर अनुशासन या झगड़ालू माता-पिता बच्चों की शैक्षिक कुशलता में बाधक बनते हैं।

बच्चों की पढ़ाई में कमजोरी के तंत्रिकीय कारण भी होते हैं। इनमें से एक कारण है : "ध्यानहीन अतिक्रिया-शीलता विकार (Attention - Deficit Hyper-activity Disorder)"। ऐसे बच्चे कोई भी चीज जल्दी समझ सकते हैं, जवाब भी जल्दी दे सकते हैं, किंतु वे आवेगी होते हैं और एक जगह चुपचाप नहीं बैठ सकते। कक्षा में इधर-उधर घूमना, सभा के दौरान दूसरे बच्चों को छेड़ना, किसी भी चीज को तोड़ना या उठा-पटक करना इनकी आदत होती है। ऐसे बच्चे अपना ध्यान एक जगह केंद्रित नहीं कर पाते और इसीलिए स्कूल में ठीक से कुछ सीख नहीं पाते। तंत्रिकीय कारणों से कमजोरी का एक और बड़ा कारण है जिसे वैज्ञानिक "डिस्लेक्सिया" या "शैक्षिक-अयोग्यता" कहते हैं। आज लगभग दस प्रतिशत बच्चे शैक्षिक-अयोग्यता से पीड़ित हैं। शैक्षिक-अयोग्यता से ग्रस्त बच्चों के मस्तिष्क का वह छोटा भाग, जो लिखने, पढ़ने, वर्तनी समझने, भाषा या अंकगणित से संबंधित होता है, पूर्ण रूप से विकसित नहीं होता है, जबकि मस्तिष्क के अन्य सभी भाग पूर्ण रूप से विकसित होते हैं। ऐसे बच्चे बुद्धिमान होते हुए भी पढ़ाई में कमजोर होते हैं। उन्हें क्या पढ़ाया गया है, वे ठीक से समझते हैं, परन्तु वे उसे लिखकर ठीक से अभिव्यक्त नहीं कर सकते हैं। थॉमस अल्वा एडिसन, लियोनार्ड डि विंसी, अलबर्ट आइंस्टीन, वुडरो विल्सन और विंटसन चर्चिल जैस महान और प्रसिद्ध व्यक्ति भी शैक्षिक-अयोग्यता से ग्रस्त थे।

शैक्षिक-अयोग्यता और उसके कारण :

शैक्षिक-अयोग्यता से ग्रस्त लोगों के मस्तिष्क की कोशाओं का विन्यास और उनकी कार्यप्रणाली एक सामान्य व्यक्ति के मस्तिष्क की कोशाओं से अलग होती है। मस्तिष्क कोशाओं की यह असामान्यता आनुवंशिक या पारिस्थितिक कारणों से पैदा होती है। वैज्ञानिकों के अनुसार शैक्षिक-अयोग्यता से ग्रस्त 85 प्रतिशत लोगों के निकट संबंधियों में ऐसा विकार होता है। लड़कों में शैक्षिक-अयोग्यता लड़कियों से तीन गुनी अधिक होती है जो मुख्यतः एक्स (X) क्रोमोजोम जीन के कारण होती है। गर्भावस्था, प्रसूति या नवजात शिशु की आरंभिक अवस्था के दौरान वाइरल इन्फेक्शन, औषधियों के प्रयोग, कुपोषण अथवा दुर्घटना आदि के कारण मस्तिष्क प्रभावित होकर बिना बुद्धि-मंदता के पारिस्थितिक शैक्षिक-अयोग्यता विकसित कर सकता है। चाहे यह आनुवांशिक कारण हो या पारिस्थितिक, शैक्षिक-अयोग्यता से ग्रस्त बच्चे का मस्तिष्क अपसंरचना, क्षति, कमजोर कार्यप्रणाली या विलंबित परिपक्वन से प्रभावित होता है। मस्तिष्क में सूचना-प्रकिया कमजोर हो जाती है, जिससे विभिन्न प्रकार की शैक्षिक-अयोग्यता उत्पन्न होती है।

बुद्धि, भाषा और मस्तिष्क :

सीखने की प्रक्रिया सहित मस्तिष्क के सभी कार्य इसके विभिन्न भागों द्वारा संचालित होते हैं। मस्तिष्क में दो अलग-अलग अर्ध-गोलार्ध होते हैं जो कार्पस कैलोसम नामक सेतु से जुड़े होते हैं। दायाँ अर्धगोलार्ध अशाब्दिक व अमूर्त कार्यों, कला, संगीत और अंतर्ज्ञान का नियंत्रण करता है। बायाँ तार्किक, परिणामकारी या गणितीय सोच और शाब्दिक कुशलताओं का नियंत्रण करता है। यह सुनने और पढ़ने के माध्यम से समझने, एवं बोलने और लिखने के माध्यम से अभिव्यक्त करने का कार्य भी करता है। मस्तिष्क के सामने की ओर का स्थान (ब्रोका एरिया) भाषाई-अभिव्यक्ति की जिम्मेदारी वहन करता है। मस्तिष्क के पीछे के एक स्थान (वर्निके एरिया) में जो हम सुनते हैं उसे समझने का कार्य संपन्न होता है। एक और बहुत ही छोटा भाषाई-क्षेत्र दायें अर्ध गोलार्ध में भी होता है। हम जो देखते, पढ़ते और सुनते हैं, उनसे संबंधित भाषाई कार्य मस्तिष्क के उपयुक्त भागों में अर्थपूर्ण निर्वचन द्वारा संचालित होते हैं। इसे "दृश्य और श्रव्य प्रक्रियण" कहते हैं। शैक्षिक-अयोग्यता से ग्रस्त मस्तिष्क की संरचना सामान्य मस्तिष्क की संरचना से भिन्न होती है जो भाषाई क्षेत्रों, दोनों अर्धगोलार्धों के बीच के सेतु और मस्तिष्क के देखने और सुनने के संपर्क-मार्ग में होती है। संरचनात्मक कमियों के कारण किसी सूचना के प्रक्रियण और अभिव्यक्ति की कार्यप्रणाली में कमी पैदा होती है। यही कमी सीखने के विभिन्न पहलुओं में अयोग्यता के रूप

में प्रदर्शित होती है। विभिन्न परीक्षणों द्वारा शैक्षिक-अयोग्यता का पता लगाकर कुछ सुधारात्मक उपाय किये जा सकते हैं। इस दिशा में वैज्ञानिक अभी और जानकारी के लिए अनुसंधान कर रहे हैं। शैक्षिक-अयोग्य बच्चों में किसी बात को समझने और मौखिक रूप से उसका उत्तर देने की पर्याप्त योग्यता होती है, किंतु पढ़कर समझने और उसे लिखकर अभिव्यक्त करने की उनकी कठिनाई, इस बात का आरंभिक संकेत है कि कहीं कुछ कमी है। शैक्षिक-अयोग्य बच्चे के सात वर्ष की उम्र तक पहुँचने पर उसे पढ़ने, लिखने और वर्तनी में भारी कठिनाई होती है। पढ़ाई में उसका उत्साह कम होने लगता है। स्कूल उसे एक बोझ मालूम पड़ता है। यदि इस समय पढ़ने, लिखने, वर्तनी याद करने और अंकगणित जैसी शिक्षा के लिए कुछ सुधारात्मक उपाय नहीं किये गये तो वह इनमें पिछड़ने लगता है। लगातार असफलता मिलने पर उसका आत्म-विश्वास और स्वाभिमान खत्म होने लगता है और उसे "बुद्धू" कहा जाने लगता है। इससे बच्चा निराश और आंतरिक रूप से तनाव-ग्रस्त हो जाता है। यह तनाव स्कूल और घर में समायोजन की समस्याएं उत्पन्न करता है। पढ़ाई से उसका ध्यान तुरंत ही विमुख हो जाता है और वह इससे दूर भागने के लिए कोई-न-कोई बहाना तलाशने लगता है। कक्षा में दूसरे बच्चों के साथ बदमाशी या मसखरी करने में उसे अच्छा लगता है। आजकल ऐसे बच्चे टीवी की ओर आसानी से आकर्षित हो जाते हैं। अपनी असफलता से बचने के लिए परीक्षा में नकल करना या अपने स्वाभिमान में कमी को छिपाने के लिए क्रोधपूर्ण व्यवहार करना, ये सब बच्चों में शैक्षिक-अयोग्यता की ओर संकेत करते हैं।

शैक्षिक-अयोग्य बच्चा - पढ़ाई में संभावित कठिनाइयाँ :

शैक्षिक-अयोग्य बच्चा भले ही फुटबॉल खेलकर न थके, पढ़ते समय बड़ी जल्दी थक जाता है। वह पुस्तक की लकीरें उंगली रख-रखकर पढ़ता है। वह धीरे-धीरे और झिझकते हुए पढ़ता है। कुछ अक्षर पढ़ने से वह चूक जाता है या कहीं-कहीं अतिरिक्त अक्षर जोड़ लेता है। विराम चिन्हों पर उसका ध्यान नहीं रहता। वह शब्द पर ठीक से ध्यान नहीं दे पाता और पहले के अक्षर से ही पूरे शब्द का अनुमान लगाता है। वह "उज्जवलता" और "उज्ज्वला" या "उज्ज्वल", "चमत्कारक" और "चमत्कार" या "Position" और "Proposition" को एक ही तरह पढ़ सकता है। पढ़ते समय पुस्तक की लकीरों या पृष्ठ के क्रम से उसका ध्यान हट सकता है। पढ़ते-पढ़ते कोई लकीर उससे छूट सकती है या वह एक ही लकीर को दुबारा पढ़ सकता है। वह एक-एक शब्द जोर से और एक ही स्वर में पढ़ता है।

लिखते समय भी ऐसा बच्चा जल्दी थकता और निराश होता है। वह बहुत ही धीरे लिखता है और उसके अक्षर भी खराब होते हैं। अपनी पेंसिल भी वह अजीब ढंग से पकड़ता है। लकीरों के बीच ठीक से अंतर नहीं रख पाता। उसे लाइन-युक्त पेपर की जरूरत होती है। लिखते समय उसके हाशिए असमान होते हैं। ब्लैक-बोर्ड पर लिखे पाठ को कॉपी में उतारने में वह कठिनाई महसूस करता है, इसलिए कभी आधा ही उतारता है तो कभी उतारता ही नहीं। शब्दों की वर्तनियाँ उसे व्याकरण की तरह विस्मयकारी लगती हैं। एक ही शब्द की वर्तनियों में वह सुबह कोई गलती करेगा तो शाम को कोई दूसरी गलती। वह पूर्ण विराम, अर्धविराम छोड़ देता है। अंग्रेजी लिखते समय बड़े अक्षर की कहाँ जरूरत है, वह ध्यान नहीं रख पाता। वह "हैं", "नहीं", "ढ़", 'i" में बिंदु लगाना या "t" को काटना भूल जाता है। उसे बहुधा रबर का प्रयोग करना पड़ता है। उसका ध्यान वर्तनियों के पैटर्न की तरफ नहीं जाता – जैसे "आवास" "प्रवास" और "निवास" में "वास" या "Station", "Relation" और "Mention" में "tion"। हर शब्द की स्मृति उसके लिए अलग-अलग होती है।

थोड़ी सी भी शैक्षिक-अयोग्यता होने से बच्चे को समान आकार वाले अक्षरों को पहचानने में कठिनाई होती है। उसे "च" और "ज", "b" और "d", "M" और "W" जैसे अक्षरों से भ्रम होता है। जिन बच्चों में शैक्षिक-अयोग्यता अधिक होती है, वे शब्दों को बदलकर भी लिख सकते हैं, जैसे : "Saw" के लिए "was" तो

"dab" के लिए "bad"। कुछ बच्चे ध्वनियों के अनुसार खुद अपनी वर्तनियाँ बना लेते हैं, जैसे : "would" के लिए "wud" या "Guess" के लिए "Ges"। कभी-कभी अनसे शब्दों के अंश भी छूट जाते हैं, जैसे : "Hospital" के लिए "Hostal"। कुछ बच्चों से वर्तनियों का क्रम भी बदल जाता है, जैसे : "Animal" को वे "Aminal" या "Hospital" को वे "Hopsital" लिख सकते हैं। ऐसे बच्चों को विशेष रूप से भारतीय भाषाएं कुछ अधिक कठिन जान पड़ती हैं, क्योंकि इनके वर्ण बहुधा एक-दूसरे से मिलते-जुलते हैं। कुछ बच्चों को दांयें और बायें हाथ का भी भ्रम रहता है। अधिकतर शैक्षिक-अयोग्य बच्चों को अपने विचारों को लिखने में कठिनाई होती है, वे सही शब्द या सही अर्थ के लिए अटक जाते हैं।

अंकगणित में भी ऐसे बच्चों को जोड़ने-घटाने के लिए उंगलियों का प्रयोग करना पड़ता है। उन्हें गिनती याद रखने में कठिनाई महसूस होती है। अंकों के क्रम उनसे बदल सकते हैं, जैसे : "16" को "61" लिखना। अंकों को जोड़ना उनके लिए सरल हो सकता है, पर घटाना उनके लिए एक समस्या होती है। इसमें उनसे तरह-तरह की गलती हो सकती है। वे गुणा-भाग का तरीका तो समझते हैं, परंतु लिखते समय गलतियाँ करते हैं। यदि मान लो वे रफ-पेपर पर कोई उत्तर "53487" निकालते हैं, तो उत्तर-पुस्तिका में इसे उतारते समय "54387" लिख सकते हैं।

कुछ बच्चों को समय, स्थान, गति या दूरी आदि समझने में कठिनाई हो सकती है। इनमें से कुछ को घड़ी देखकर समय बताने में बड़ी कठिनाई होती है, तो कुछ को किसी भी वस्तु या परिचित व्यक्ति का नाम बताने में कठिनाई होती है। ऐसे कुछ बच्चों को नक्शों और दिशाओं को लेकर परेशानी होती है, तो कुछ को सप्ताह के दिनों को लेकर भ्रम रहता है। वे अपनी दैनिक गतिविधियों और चीजों को व्यवस्थित रूप नहीं दे पाते। कहानी सुनाते समय घटनाओं के क्रम सही रखने में उन्हें कठिनाई होती है। किसी चीज का वर्गीकरण, श्रेणीकरण या सारांश प्रस्तुत करना भी उनके लिए कठिन होता है। किसी भी चीज को क्रमबद्ध रूप से रखते में वे कठिनाई महसूस करते हैं।

ऐसे होशियार किंतु शैक्षिक-अयोग्य बच्चों में कुछ संवेदनात्मक-विशिष्टता भी दिखाई देती है। हो सकता है कि उसे टेलीफोन की घंटी या बच्चे का रोना सुनाई दे, पर अपनी माँ की आवाज न सुनाई दे, जो उसे बुला रही हो। वह लोगों और स्थानों के नाम, अपना पता, अपना टेलीफोन नंबर भले ही भूल जाए, पर हो सकता है कोई अप्रासंगिक बात उसे अच्छी तरह याद रहे। शैक्षिक-अयोग्य बच्चे सामान्यत: अपनी किताबें, पेंसिलें आदि गुमा देते हैं। अपना होमवर्क करना वे भूल जाते हैं। वे अव्यवस्थित और फूहड़ दिखाई देते हैं। उनके कमरे साफ-सुथरे नहीं मिलते। खाना खाते समय भी वे बेतरतीब लगते हैं। चलते-फिरते समय भी वे रास्ते में किसी भी चीज से टकरा जाते हैं। वे कतार में इंतजार नहीं कर सकते। कैसा भी अवसर हो, वे शोर करने या फिजूल हँसने से नहीं चूकते।

कुछ विशेषताएँ :

इनमें कुछ विशेषताएं भी होती हैं। शैक्षिक-अयोग्य भले ही सीढ़ियों पर लड़खड़ा जाए, पर वह एक बहुत अच्छा तैराक बन सकता है। पहेली या चुटकुला समझने में उसे कठिनाई हो सकती है, पर वह शतरंज या चेकर्स खेलने में प्रवीण हो सकता है। उसे जोड़ना या घटाना न आए, पर मोटरों और मशीनों के कार्य में वह कुशल हो सकता है। संगीत व कला के क्षेत्र में वह उस्ताद हो सकता है।

शैक्षिक अयोग्यता - निदान और सुधारात्मक अनुशिक्षण :

यदि बच्चे में शैक्षिक-अयोग्यता हो, तो आरंभ में ही इसका पता लगाकर निदान हेतु उपाय करने से यह माता-पिता, शिक्षक और स्वयं बच्चे के लिए अत्यंत लाभकारी होगा। जिस बच्चे को लेकर शैक्षिक-अयोग्यता का संदेह होता है, उसके लिए माता-पिता के सक्रिय सहयोग से बहुविध मूल्यांकन की आवश्यकता होती है। इस मूल्यांकन के लिए एक बहु-विशेषज्ञ दल की आवश्यकता होती है, जिसमें शिक्षा/चिकित्सा मनोविज्ञानी, शिशु-रोग विशेषज्ञ/मनोचिकित्सक, समाज-सेवक और

वाक्-चिकित्सक शामिल होते हैं । निदान के लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं :-

(क) बच्चे की समस्याओं/कठिनाइयों के बारे में पर्याप्त जानकारी ।

(ख) शिक्षक की विस्तृत रिपोर्ट ।

(ग) बच्चे की जाँच और परीक्षण ।

(घ) समस्या और रोग के पूर्वलक्षणों के संबंध में बच्चे और माता-पिता को सलाह ।

(ङ) समुचित युक्तियाँ तैयार करना ।

बच्चे की जाँच :

इसके अंतर्गत शारीरिक/तंत्रिकीय जाँच और परीक्षण शामिल हैं । आवश्यक होने पर श्रवण-शक्ति और आँखों की जाँच भी ।

मनोवैज्ञानिक परीक्षण :

इसके अंतर्गत निम्नलिखित परीक्षण किये जाते हैं, ताकि स्कूल में बच्चे की प्रगति में बाधक कारणों का पता लगाया जा सके :-

(1) सामान्य बुद्धि-परीक्षण :

बच्चों के बुद्धि-परीक्षण के लिए सामान्यत: "वेक्लर बुद्धि मापक्रम" का प्रयोग किया जाता है । यह परीक्षण अमेरिका में विकसित किया गया था, जिसमें भारतीय बच्चों के परीक्षण हेतु सुधार किया गया है । इस परीक्षण के द्वारा बच्चों की पठन-शक्ति और वर्तनी संबंधी कठिनाइयों का पता चलता है । एक सामान्य बच्चा इस मापक्रम के विभिन्न परीक्षणों में समान रूप से अच्छे या कम अंक प्राप्त करता है । किंतु शैक्षिक-अयोग्य बच्चा परीक्षण के एक क्रम में अच्छा प्रदर्शन करता है, तो दूसरे क्रम में खराब ।

(2) पठन-शक्ति मूल्यांकन :

बच्चे की पठन-उम्र और पठन-योग्यताओं को मापने के लिए "स्कोनेल पठन-शक्ति परीक्षण" और "वुडरॉक पठन-शक्ति परीक्षण" जैसे अनेक मानकीकृत परीक्षण विकसित किए गए हैं । किंतु ये परीक्षण पश्चिमी देश के बच्चों के लिए तो ठीक हैं, पर भारतीय बच्चों के लिए अनुपयुक्त हैं । अत: यहाँ के बच्चों के लिए अनौपचारिक रूप से पठन-शक्ति का मूल्यांकन किया जाता है, जिसके अंतर्गत बच्चों के पठन-प्रदर्शन का मूल्यांकन किया जाता है । इससे अत्यंत महत्वपूर्ण और विशिष्ट जानकारी प्राप्त होती है । सामान्यत: पठन-अयोग्यता इस प्रकार होती है: एक-एक शब्द अलग-अलग करके पढ़ना, शब्द/अक्षर छोड़ देना या जोड़ देना, शब्द/अक्षर का व्युतक्रम और अपने अनुमान से शब्द पढ़ना ।

(3) वर्तनियों का मूल्यांकन :

वर्तनी-योग्यता एक जटिल और बहु-आयामी प्रक्रिया है । इसके अंतर्गत स्वनिक (ध्वनीय) शब्दों की वर्तनियों, उपसर्ग, परसर्ग व जोड़ने के अन्य नियमों से संबंधित शब्दों की वर्तनियों, शब्द देखने के बाद उसे ज्यों-का-त्यों लिखना आदि की जाँच की जाती है । ठीक प्रकार से मूल्यांकन करने से, इससे पता चलता है कि बच्चे में वर्तनी संबंधी कौन सी कुशलताएँ हैं अथवा नहीं हैं, और विशेष रूप से वह किस तरह की गलतियाँ कर रहा है । इस मूल्यांकन के बाद सुधारात्मक अनुशिक्षण हेतु निश्चित निर्देश दिये जा सकते हैं ।

(4) अंकगणित-कुशलता का मूल्यांकन :

अधिकतर शैक्षिक-अयोग्य बच्चों को गणित सीखने में कठिनाई होती है । उम्र के सभी स्तर पर वह इस कठिनाई का अनुभव करता है । इसके मूल्यांकन के लिए बच्चों द्वारा हल किये गये गणित का अवलोकन किया जाता है, उनके द्वारा की गई गलतियों का विश्लेषण किया जाता है, और उनसे मौखिक साक्षात्कार/परीक्षा ली जाती है । इससे बच्चे की अंकगणित-अयोग्यता की प्रकृति का पता चलता है व संबंधित अन्य जानकारियाँ प्राप्त होती हैं ।

(5) अन्य मूल्यांकन :

अन्य मूल्यांकनों के अंतर्गत छह वर्ष से अधिक उम्र के बच्चों की हैंडराइटिंग, समझ और ध्यान शक्ति का मूल्यांकन किया जाता है । छह से कम उम्र के बच्चों की पूर्व-शैक्षिक कुशलताओं का मूल्यांकन किया जाता है, जिसके अंतर्गत दृश्य-भेद, श्रव्य-भेद, वाक्पटुता, स्मृति, ध्यान आदि बातों का मूल्यांकन किया जाता है ।

उपर्युक्त प्रकार से मूल्यांकन के पश्चात विभिन्न क्षेत्रों में बच्चे की कुशलता के स्तर तथा उसकी अयोग्यता की प्रकृति का पता लगाया जाता है और रिपोर्ट तैयार की जाती है। इस रिपोर्ट के आधार पर विशेषज्ञों द्वारा हर बच्चे के लिए अलग से सुधारात्मक अनुशिक्षण कार्यक्रम प्रस्तावित किया जाता है।

सहयोग और जिम्मेदारियाँ :

शैक्षिक-अयोग्य बच्चों की सहायता करना-सरकार, शिक्षा विभाग, माता-पिता, शिक्षकों और स्कूल प्रबंधकों की सामूहिक जिम्मेदारी है। स्कूल प्रबंधकों को इस ओर गहराई से ध्यान देना होगा क्योंकि हर स्कूल में लगभग दस प्रतिशत ऐसे बच्चों को सहयोग की आवश्यकता होती है। माता-पिता और स्कूलों को ऐसे बच्चों के लिए सरकार से सुधारात्मक अनुशिक्षण, एक से अधिक भाषा सीखने के लिए छूट, लिखित परीक्षाओं के लिए लेखकों की व्यवस्था जैसे विशेष प्रावधानों की माँग करना चाहिए।

माता-पिता और शिक्षक जो यह जान चुके हैं कि बच्चे की शैक्षिक-अयोग्यता, बच्चे या उनके किसी दोष के कारण नहीं बल्कि बच्चे के भीतर छिपे "विकार" के कारण है, उनकी भी यह जिम्मेदारी है कि वे ऐसे बच्चे के भीतर स्वाभिमान की भावना विकसित करें और उसकी हीन भावना को दूर करने का प्रयास करें। इसके लिए उन्हें बच्चे को सार्थक-समय देना होगा। उन्हें बच्चे के साथ उसके स्तर के अनुकूल बातचीत करनी होगी और उसमें आत्मविश्वास भरना होगा। कक्षा में हाथ उठाना या शिक्षक से यह कहना कि उसे कोई बात समझ में नहीं आयी है, इसके लिए आत्मविश्वास की जरूरत होती है। एक बार सफल न होने पर लगातार प्रयत्नशील बने रहना भी आत्मविश्वास से ही संभव है। बच्चे की क्षमताओं के बारे में चुभने वाली टिप्पणियाँ करने से भी बचना होगा। माता-पिता को बच्चे के कैरियर या बोर्ड परीक्षा की चिंता न करते हुए, उसके लिए अल्पकालिक और दैनिक लक्ष्य रखना चाहिए। शैक्षिक क्षमताओं को लेकर बच्चे पर किसी प्रकार का भार नहीं होना चाहिए। माता-पिता को ऐसे बच्चे को शिक्षित करने के लिए स्वयं प्रशिक्षण लेना होगा। ऐसे बच्चे को प्यार और आदर चाहिए, वह भी शैक्षिक कुशलता या किसी उपलब्धि की शर्त पर नहीं।

शिक्षकों को चाहिए कि वे शैक्षिक अयोग्य बच्चे की सीमाओं को स्वीकार करें और शिक्षण के नये और सरल तरीके खोजें और बच्चे को उसके लक्ष्यों तक पहुँचाने का मार्ग सुगम करें। उन्हें अपना व्यवहार इस प्रकार रखना होगा कि ऐसा बच्चा उनसे मिलने या कुछ पूछने में बिलकुल संकोच या शर्म न करे। बच्चे के प्रयत्नों की उदारता से प्रशंसा करें। अन्य क्षेत्रों में उसकी कुशलताओं को पहचानें और उसके लिए ऐसे वैकल्पिक कैरियर की पहचान करने में मदद करें, जहाँ वह अपनी उत्कृष्टता सिद्ध कर सके।

उपर्युक्त प्रयत्नों से शैक्षिक-अयोग्य बच्चा राहत महसूस करेगा। वह इस बात को समझ सकेगा कि उसके शैक्षिक प्रदर्शन की कमजोरी का कारण क्या है और वह चिंतामुक्त रहकर सब कार्य करेगा। माता-पिता और शिक्षक भी ऐसे बच्चे के प्रति अपना व्यवहार बदलकर, एक ओर जहाँ राहत महसूस करेंगे, वहीं दूसरी ओर इससे शैक्षिक-अयोग्य बच्चे को उसके लायक मंजिलों की ओर बढ़ने में मदद कर सकेंगे। कौन जानता है कि ऐसे बच्चों के बीच और कितने एडिसन, आइंस्टीन, विंसी, विल्सन और चर्चिल छिपे हुए हैं।

❐❐❐

टिप्पणियां

1. क्या होती है 'फार्म केमर्जी' ?

अमेरिका में सन् 1920-30 के विश्वव्यापी अवमूल्यन के फलस्वरूप कृषि उत्पादों के सदुपयोग की विस्तृत योजना पर विचार किया गया। इसके लिए अनेक समितियां बनायी गयीं। कच्चे माल को नष्ट होने से बचाने तथा उनके अलाभकर होने पर भी उनके उपयोग के वैज्ञानिक हल ढूँढ़ने का प्रयत्न किया गया। अंत में रसायन विज्ञान के संप्रयोग द्वारा इस समस्या का समाधान किया गया और 'फार्म केमर्जी' (Farm Chemurgy) जैसे नये विज्ञान की नींव पड़ी। यह 'फार्म की समस्याओं को हल करने वाला' रसायन विज्ञान है। हमारे देश में भी इसकी बहुत उपयोगिता है।

कृषि प्रधान देश होने के कारण हमारे देश में जगह-जगह भारी मात्रा में ऐसे कार्बनिक पदार्थ बिखरे पाये जाते हैं जो औद्योगिक उद्देश्यों के लिए वांछित प्राकृतिक पदार्थों के अभाव की पूर्ति हेतु अच्छे विकल्प सिद्ध हुए हैं। वैसे तो कृषि का कोई पदार्थ व्यर्थ हो, बेकार हो, यह कहना तनिक भ्रान्तिपूर्ण लगता है। कृषि के प्रायः प्रत्येक तत्व का उपयोग किया जाता है। फिर भी कुछेक कृषि व्यर्थ पदार्थ ऐसे हैं - जो बेकार जाते हैं और भारत जैसे विकासशील देश में जहाँ का अर्थतन्त्र मूलतः कृषि पर आधारित है, कृषि व्यर्थ पदार्थों का ईंधन या कंपोस्ट की बजाय अधिक मूल्यवान उत्पाद पैदा करने में उपयोग किया जाना बहुत महत्वपूर्ण है।

कृषि व्यर्थ पदार्थों को मोटे तौर पर उनकी उपलब्धता के आधार पर दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। उनमें से एक वर्ग में कृषि-औद्योगिक व्यर्थ पदार्थ आते हैं, जो कि काफी परिमाण में संसाधन स्थलों पर ही उपलब्ध होते हैं और दूसरे वर्ग की परिधि में फसल के व्यर्थ तत्व, पेड़ों के पत्ते, गिरे हुए पेड़ आदि आते हैं जो प्रकृति में बिखरे होते हैं और जिनके परिमाण का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। कृषि व्यर्थ पदार्थों में मुख्यतः सेलुलोस, लिग्निन, पेन्टोसेन, प्रोटीन, वसा, रेजिन आदि कार्बनिक तत्व व्यर्थ विद्यमान होते हैं। साथ ही उनमें सिलिकन, फास्फोरस, पोटैशियम, मैग्नीशियम, कैल्शियम आदि तत्व पाये जाते हैं। इन व्यर्थ पदार्थों के प्रत्येक तत्व का अलग से विश्लेषण उनके निश्चित उद्देश्य के लिए रासायनिक उपयोग की ओर इंगित करता है।

सामान्यतया कार्बोहाइड्रेटों पर आश्रित उद्योगों की संख्या सर्वाधिक है। चाहे ईख, चुकन्दर लें या आलू, मक्का या फिर कपास, फ्लैक्स रेमी जैसे रेशे। हम सुक्रोस, स्टार्च या सेलुलोस जैसे कार्बनिक यौगिकों की बात करते हैं। ईख या चुकन्दर से निकला शीरा, किसी न किसी रूप में अन्य रसायनों के प्राप्त करने के लिए जनक पदार्थ हो सकता है। सुक्रोस से सिट्रिक अम्ल, लैक्टिक अम्ल, एल्कोहल बनाये जाते हैं। शीरा से एल्कोहल प्राप्त किया जाता है। इन पदार्थों के कई उपयोग हैं।

स्टार्च के स्रोत हैं - शकरकन्द, आलू, मक्का। स्टार्च प्राप्त करना स्वयं में एक उद्योग है। किंतु एक बार स्टार्च प्राप्त हो जाने पर किण्वन (Fermentation) द्वारा अनेक कार्बनिक अम्ल तथा ऐसीटोन उपलब्ध किये जा सकते हैं।

नीम, महुआ, साल, धूप, करंज, खाकन, नाहार, कोकुम, कमला, पीसा, मोरती, धान की भूसी, चाय, काफी, रबड़ और तम्बाकू के बीज वनस्पति तेलों के महत्वपूर्ण प्राकृतिक पदार्थ स्रोत हैं। बिनौला, सोयाबीन, मूँगफली आदि प्रोटीन धनी उत्पाद हैं। इनसे प्रोटीन विमुक्त किये जा सकते हैं। आजकल भोजन में प्रोटीन को अधिक महत्व दिया जा रहा है। सोयाबीन से न जाने कितने प्रकार के व्यंजन तैयार किये जाते हैं। बच्चों के लिए 'पूर्ण भोजन' या 'दुग्ध-आहार' में ऐसे उत्पादों का प्रयोग किया जाता है।

कपास, भूसा, डंठल, छोई, फ्लैक्स रेमी काष्ठ आदि सेलुलोस एवं लिग्निन के स्रोत हैं। सारा रेशा एवं कागज उद्योग इन्हीं उत्पादों पर निर्भर है। सेलुलोस स्रोतों से सेलुलोस नाइट्रेट, प्लास्टिक, फोटोग्राफी के सामान प्राप्त होते हैं। काष्ठ लिग्निन का अपूर्व साधन है जिससे कागज तैयार किया जाता है। विभिन्न रसायन जो सेलुलोस, से

तैयार होते हैं ग्लूकोस तथा फरफुरैल्डिहाइड हैं। काष्ठ को अम्ल के साथ उपचारित करके जल-अपघटन द्वारा यह तैयार होता है। ग्लूकोस का प्रयोग खाने, बिस्कुट बनाने आदि में होता है। फरफुरैल्डिहाइड पेट्रोल उद्योग में परिरक्षी का कार्य करता है।

चूँकि कृषि व्यर्थ पदार्थ प्रकृति में मुख्यतः कार्बनिक होते हैं, उनको विभिन्न ग्रेडों के सक्रिय कार्बन बनाने के लिए हवा के अभाव में गर्म किया जा सकता है। व्यर्थ पदार्थों में मौजूद अन्य तत्वों को किसी न किसी विधि द्वारा हटाया जा सकता है। उदाहरणतः धान की भूसी को सोडियम हाइड्रॉक्साइड से गर्म कर सिलिका को अलग किया जा सकता है। इस मामले में एकमात्र महत्वपूर्ण पहलू यह है कि प्राकृतिक पदार्थ सस्ता और प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो तथा उससे शुद्ध सक्रिय कार्बन बनाया जाये। सक्रियत कार्बन के उत्पादन के लिए उपयुक्त प्राकृतिक पदार्थ इस प्रकार हैं – नारियल का छिलका, मूँगफली का छिलका, जूट की चट्टी, अलसी की भूसी, इमली के बीज, खोई, धान की भूसी इत्यादि।

सोडियम या पोटैशियम हाइड्रॉक्साइड के साथ संयुक्त किये जाने पर सेलुलोस व्यर्थ पदार्थों से आक्जेलेट उत्पन्न होते हैं जिनसे आक्जेलिक अम्ल बनाया जाता है। आक्जेलिक एसिड के निर्माण हेतु उपयुक्त प्राकृतिक सामग्रियों के तौर पर पौधों आदि के निम्नलिखित उत्पादों के उपयोग का सुझाव दिया गया है : शीरा, स्टार्च (डेक्सट्रिन), सेलुलोस व्यर्थ, लकड़ी का बुरादा, अनन्नास व्यर्थ, महुआ फूल, मक्का के भुट्टे तथा अन्य अनाज-व्यर्थ पदार्थ इत्यादि।

फलों और सब्जियों के व्यर्थ पदार्थों, खाद्यान्नों दलहलों तथा तिलहनों के व्यर्थ से उपयोगी पशु चारा तैयार किया जाता है।

सारांश-रूप में यह कहा जा सकता है कि किसानों द्वारा उत्पादन किये गये खाद्यान्नों/दलहलों/तिलहनों/फलों-सब्जियों इत्यादि को उपयोग में लाकर व्यर्थ पदार्थों को नष्ट कर देना अदूरदर्शिता का परिचायक होगा। इसलिए वैज्ञानिकों को उनकी सहायता के लिए आगे बढ़कर आना है और उन्हें विविध प्रकार के उत्पाद तैयार करने के लिए आवश्यक तकनीक का विकास करना है।

डॉ. दिनेश मणि,
प्राध्यापक, रसायन विभाग,
संयुक्त मंत्री, विज्ञान परिषद प्रयाग,
महर्षि दयानंद मार्ग, इलाहाबाद 211 002.

2. ऐफ्लाटॉक्सिन : एक तीव्र जहर

कवक (फफूंद) अपनी जैविक क्रियाओं द्वारा विभिन्न प्रकार के कवक विष (माइकोटॉक्सिन्स) उत्पन्न करते हैं। इन माइकोटॉक्सिनों में "ऐफ्लाटॉक्सिन" सबसे तीव्र जहर है जिससे फेफड़े, वृक्क, आंत्र आदि में कैंसर जैसे भयानक रोग हो सकते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 30 पी. पी. बी. से अधिक मात्रा में ऐफ्लाटॉक्सिन की शरीर में उपस्थिति को विषाक्त घोषित किया है। ऐफ्लाटॉक्सिन का गलनांक 240-269 ^{0}C होने से इन्हें उबालकर भी नष्ट नहीं किया जा सकता।

माइकोटॉक्सिन्स की उत्पत्ति एवं इतिहास करीब 5000 वर्ष पूर्व का है। विकाशील एवं कम विकसित देशों में विभिन्न प्रकार के खाद्यानों पर विभिन्न प्रकार के कवक विष ज्ञात हो चुके हैं। भारत एवं अन्य देशों में इन कवक विषों से खाद्य विषाक्तता होने की कई दुर्घटनाएं हो चुकी हैं, जिनमें जानवरों एवं मनुष्यों की मृत्यु भी हुई। इन कवक विषों को क्रमशः जूटॉक्सिक (जो जानवरों के लिए विषाक्त) फाइटोटॉक्सिक (पौधों के लिए विषाक्त), एवं एंटीबायोटिक (सूक्ष्म जीवों के लिए विषाक्त), कहा जाता है। यह कवक विष मुख्यतः "एसपरजिलस" नामक कवक के द्वारा होता है। मध्यकाल में यूरोप में सेन्ट ऐन्थोनी फायर या अरगोटिज्म के नाम से फैला रोग मुख्यतः ऐफ्लाटॉक्सिन के कारण ही हुआ था जिसमें एसपरजिलस फलेवस नामक कवक से संक्रमित खाद्य पदार्थ खाने से कई जानवर मारे गये थे। "स्टेकीबोटराइटिस" नामक कवक से संक्रमित खाद्य से रूस में, 1940 में घोड़े एवं मनुष्य बीमार हुए थे। इसी प्रकार जापान में द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद "पेनिसिलियम" नामक कवक से संक्रमित खाद्य से सैकड़ों लोग बीमार हो गये थे। विभिन्न प्रकार के कवक विषों

तालिका - 1 : विभिन्न देशों में ऐफ्लाटॉक्सिन सहन करने भी मात्रा

देश	खाद्य का प्रकार	सहन करने की मात्रा (पी. पी. बी. में) (ऐफलाटॉक्सिन बी)
जापान	सभी खाद्य पदार्थों में	10
पौलेण्ड	सभी खाद्य पदार्थों में	5
स्वीडन	- - - - -	5-10
संयुक्त राज्य अमेरिका	मटर व अन्य कुलों एवं सामान्य उपभोक्ता वस्तुओं में	15
	शेष सभी खाद्य पदार्थों में	20
कनाडा	फल एवं उसके उत्पादों में	15-20
डेनमार्क	मटर कुल के फलों तथा ब्राजील के फलों में	5-10
डेनमार्क	जानवरों के चारे एवं अन्य में	20-50 (ई. ई. सी.*)
भारत	मटर कुल के एवं अन्य फलों तथा खाद्य पदार्थों में	30 (पी. ए. जी.**)
	जानवरों के चारे एवं अन्य में	1000 (निर्यात योग्य में)
इटली	मटर कुल के एवं अन्य फलों में (आयातित)	50
मलावी	मटर कुल के फलों में तथा खाद्य पदार्थों में	50 (पी. ए. जी.**)
नार्वे	तेलीय बीजों के खाद्य पदार्थों में (आयातित)	600
रोडेशिया	जानवरों के चारे एवं खाद्य पदार्थों में	50-400
युनाइटेड किंगडम	(अ) मटर कुल के फलों एवं अन्य खाद्य पदार्थों में	50
	(ब) जानवरों के चारे में	500
बेल्जियम	मटर कुल एवं अन्य निर्यात योग्य खाद्य पदार्थों में	20-50
फ्रांस	सभी खाद्य पदार्थों में	20-50 (ई. सी. सी.*)
इजराइल	सभी खाद्य पदार्थों में	20
ब्राजील	मटर कुल एवं अन्य फलों में	50

* यूरोपियन इकनामिक कमीशन द्वारा निर्धारित / ** प्रोटीन एडवाइजरी ग्रुप द्वारा निर्धारित

में सबसे पहली खोज "ऐफ्लाटॉक्सिन" की हुई, जो मुख्यत: "एसपरजिलस फलेवस" एंव "एसपरजिलस पेरासाइटिकस" नामक कवक से उत्पन्न होता है। अब तक 18 से अधिक ऐफ्लाटॉक्सिन्स खोजे जा चुके हैं, इनमें से मुख्यत: चार सामान्यत: खाद्य पदार्थों में पाये जाते हैं। ये हैं :- ऐफ्लाटॉक्सिन B_1, B_2, G_1 & G_2। इसके अतिरिक्त ऐफ्लाटॉक्सिन M_1 व M_2 जानवरों के दूध में तथा ऐफ्लाटॉक्सिन P_1 (ऐफ्लाटॉक्सिन से संक्रमित खाद्य ग्रहण किये हुए) बंदर के मूत्र में पाये गये हैं। इन सबके अलावा एफ्लाटॉक्सि GM_1, B_3, G_3, B_{2a}, G_{2a}, एंव B_3 आदि भी ज्ञात हो चुके हैं। ऐफ्लाटॉक्सिन B_1, B_2, G_1, G_2, का गलंनाक बिंदु 240 - 269 ^{0}C है अत: उबालने पर भी ये नष्ट नहीं होते।

ऐफ्लाटॉक्सिन संक्रमण की कई घटनाएं विकासशील एवं कम विकसित देशों में ज्ञात की जा चुकी हैं, जिसमें कई जानवरों एवं मनुष्यों की मृत्यु भी हुई है। राजस्थान में भी अक्तूबर, 1974 में अनियमित वर्षा होने से ग्रामीण इलाकों के गरीब भील जाति के लोगों को जीवन यापन हेतु कवक संक्रमित मक्का वैकल्पिक खाद्य के रूप में खाना पड़ा जिससे कई लोग खाद्य विषाक्ता के कारण मारे गये। अनुसंधान द्वारा इसका कारण "ऐफ्लाटॉकिसन" पाया गया। विभिन्न देशों में ऐफ्लाटॉक्सिन की सहन करने योग्य सीमा ज्ञात की जा चुकी है (तालिका-1)। कई विभिन्न वैज्ञानिक अनुसंधानों द्वारा ज्ञात हा चुका है कि विभिन्न प्रकार के माइकोट्रॉक्सिन्स की मात्रा यदि धीरे-धीरे शरीर में जाती रहे तो एक निश्चित मात्रा के एकत्रित

होने पर मनुष्य/जानवर की मृत्यु हो सकती है।

ऐफ्लाटॉक्सिन उत्पन्न करने वाली कवक "एसपरजिलस फलेवस" एवं "एसपरजिलस पेरासाइटीकस" आदि के बीज वायु में मुक्त रुप से बिखरे रहते हैं तथा किसी भी प्रकार से खाद्य को संक्रमित कर उनमें खाद्य विषाक्तता उत्पन्न कर सकते हैं। ग्रामीण इलाकों में जहां खाद्य संग्रह के वैज्ञानिक तरीकों का अभाव होता है, वहां इस कवक विष से ग्रसित होने के ज्यादा अवसर होते हैं।

किसी भी प्रकार के कवक से संक्रमिक वस्तुओं का सेवन नहीं करना चाहिए तथा उन्हें नष्ट कर देना चाहिए। इस संबंध में ग्रामीण एवं गरीब तबके के लोगों को जानकारी देने एवं उससे बचाव के तरीके बताने हेतु प्रयास करने की भी आवश्यकता है।

नवीन बोहरा, डॉ. डी. के. पुरोहित एवं रेखा दाधीच

प्लाट नं. 389, गली नं. 10,
मिल्कमैन कॉलोनी, पॉल रोड, जोधपुर

3. कुछ विशिष्ट गैसें

देश में औद्योगिक प्रगति के साथ-साथ नयी-नयी प्रौद्योगिकियों का प्रवेश होना अनिवार्य है। साथ ही इनमें अत्याधुनिक उपकरणों का समावेश एवं विशिष्ट गैसों एवं उनके मिश्रणों का प्रयोग होना भी निश्चित है। इन सभी प्रक्रमों की उन्नति के लिए एवं वैज्ञानिक अनुसंधान हेतु उन विशिष्ट गैसों के भौतिक एवं रासायनिक गुणों का ज्ञान होना भी आवश्यक है जिससे कि इन गैसों का प्रयोग करते समय यदि आवश्यक हो, तो उचित सावधानी रखी जाय। इन गैसों के भौतिक गुणों का उल्लेख तालिका में किया गया है। विशिष्ट गैसों में मुख्यत: ऑर्गन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन व ऑक्सीजन का अत्यधिक उपयोग होता है।

आर्गन :

यह गैस हवा से भारी होती है, न जलती है और न जलने में सहायता करती है। यद्यपि विषाक्त नहीं है परंतु हवा, जो श्वास प्रक्रिया की आवश्यकता है, को विस्थापित कर गला अवरुद्ध कर देती है। आर्गन रासायनिक रुप में चरम अनभिक्रिय है।

उपयोग :

आर्गन की रासायनिक निष्क्रियता का प्रयोग कोमल धातुओं जैसे, एल्यूमीनियम, टाइटेनियम एवं अन्य मिश्रधातुओं को जोड़ने के लिए निष्क्रिय वातावरण तैयार करना है। यह इलेक्ट्रिक बल्ब में भरने के काम आती है। क्रियाशील धातुओं जैसे नोवीडीयम, टाइटेनियम एवं जरकोनियम के शोधन, टांका लगाने एवं सिन्टरन के लिए, सुरक्षित वातावरण बनाने में सहायक होती है। अर्धचालक पदार्थों एवं इलेक्ट्रॉनिक घटकों के बनाने में आर्गन परिक्षक गैस एवं वाहक गैस के रुप में भी प्रयोग होती है। विश्लेषणात्मक यंत्रों जैसे वर्णलेखिकी एवं स्पैक्ट्रममिति में वाहक गैस के रुप में प्रयोग होती है। आर्गन अकेली अथवा अन्य गैसों के साथ मिलाकर विसर्जन-लैंप में भरने के काम आती है।

हाइड्रोजन :

हाइड्रोजन हवा से हल्की होती है, बहुत ज्यादा ज्वलनशील है, और लगभग अदृश्य ज्वाला की तरह जलती है। हाइड्रोजन और हवा का मिश्रण विस्फोटक होता है। यद्यपि विषाक्त नहीं है फिर भी हवा (श्वास प्रक्रिया के लिए आवश्यक), को विस्थापित कर गला अवरुद्ध करती है।

उपयोग :

रासायनिक संश्लेषण में हाइड्रोजन के बहुत परिपाटी उपयोग हैं। अति शुद्ध हाइड्रोजन विस्तृत रुप से वातावरण गैस अथवा धातुकर्मी प्रक्रमों एवं इलेक्ट्रॉनिकी घटकों के बनाने में अपचायक के रुप में काम आती है। यह ज्वाला आयोनाइजेशन डिटेक्टर वर्णलेखिकी में वाहक गैस के रुप में प्रयोग होती है। विश्लेषण के क्षेत्र में इसका विस्तृत प्रयोग होता है। हाइड्रोजन का दूसरा महत्वपूर्ण अनुप्रयोग इलेक्ट्रॉनिकी उद्योग में संतुलित गैस मिश्रण के रुप में होता है। भविष्य में इसका वाहन ईंधन के रुप में प्रचलित होने की संभावनाएं भी है।

तालिका : विभिन्न गैसों के भौतिक गुण

	आर्गन	हाइड्रोजन	नाइट्रोजन	ऑक्सीजन
अणुभार	39.95	2.016	28.01	32.00
क्वथनांक वायुमंडलीय दाब (°सै.)	-185.9	252.9	-195.8	-182.9
क्रांतिक ताप (°सै.)	-122.5	-240.2	-147.1	-118.8
क्रांतिक दाब (कि.ग्राम./सेमी²) निरपेक्ष	49.6	13.2	34.6	51.8
आपेक्षिक घनत्व हवा के सापेक्ष=1	1.38 (15 °सै.)	0.07 (0 °सै.)	0.97 (21.1 °सै.)	1.1 (21.1 °सै.)
आपेक्षिक आयतन वायुमंडलीय दाब व 21.1 °सै. पर (लीटर/कि.ग्राम.)	603.7	11967	861.5	755.4
वायुमंडलीय दाब पर विलयता (लीटर/लीटर पानी)	0.034 (20 °सै.)	0.019 (15.5 °सै.)	0.023 (0 °सै.)	0.31 (25 °सै.)
0 °सेलसियस पर ऊष्मा चालकता, कैलोरी / (सेकंड) (°सै.) (सेमी.)	0.0000392	0.00040	0.000058	0.0000585
हवा में ज्वलनशीलता की सीमा	---	4.75 % आयतन	---	---

नाइट्रोजन :

नाइट्रोजन हवा से थोड़ी कम घनी होती है। न जलती है और न जलने में सहायक होती है। सामान्य परिस्थितियों में नाइट्रोजन रासायनिक अनिभिक्रिय है। यह विषाक्त नहीं है लेकिन हवा को विस्थापित कर साधारण श्वासावरोध करती है।

उपयोग :

नाइट्रोजन विस्तृत रूप से रासायनिक संश्लेषण, धातुकर्मी प्रक्रमों में अक्रिय वातावरण देने, ऑक्सीजन भावुक पदार्थों की पैकिंग एवं विद्युत बल्बों में भरने में प्रयोग होती है। यह वाहक गैस के रूप में विश्लेषणात्मक यंत्रों में प्रयोग होती है। अर्धचालकों के घटकों को बनाने के लिए अक्रिय वातावरण देने हेतु नाइट्रोजन का प्रयोग होता है।

ऑक्सीजन :

ऑक्सीजन हवा से थोड़ी अधिक भारी व जीवनोपयोगी है तथा दहनक्रिया में सहायक है। शुद्ध संपीडित ऑक्सीजन तैल एवं ग्रीज के संपर्क में आने पर विस्फोट करती है। सभी दहन क्रियाएं सामान्य से अधिक मात्रा में ऑक्सीजन होने पर अधिक वेग से होती है। ऑक्सीजन विषाक्त नहीं है लेकिन ऑक्सीजन की अधिकता वाले वातावरण में विशेषकर उन्नत दबाव वाले क्षेत्रों में दीर्घकालिक श्वासक्रिया पर अवांछनीय प्रभाव पड़ता है।

उपयोग :

सबसे अधिक ऑक्सीजन का प्रयोग लोहा बनाने तथा विभिन्न धातुओं को काटने, आकार देने व जोड़ने में होता है। यह विभिन्न रसायनों के संश्लेषण में काम आती है। इसका आवश्यक प्रयोग जीव मात्र की श्वास प्रक्रिया में होता है। इसके अन्य प्रयोगों में प्रदूषण की रोकथाम, शक्ति उत्पादन, एवं खदान विस्फोटकों का निर्माण है। अर्धचालकों के बनाने हेतु ऑक्सीकृत परत चढ़ाने में भी इसका प्रयोग होता है।

आर. बी. गुप्ता
वैज्ञानिक,
भारतीय पेट्रोलियम संस्थान,
पो. : आई. आई. पी., मोहकमपुर,
देहरादून - 248 005

❐❐❐

पटाखों की निराली दुनिया

आतिशबाजियों के निर्माण तथा उपयोग की तकनीक को "पायरोटैक्निक" या अग्निक्रीड़ा कहते हैं। आतिशबाजियों में साधारण रुप से प्रयोग किये जाने वाले विस्फोटक पदार्थों में डेक्सट्रिन, चारकोल, रेडगम, एल्यूमीनियम, टाइटेनियम तथा मैगनीशियम जैसे धात्विक ईंधन सम्मिलित होते हैं। बहुतायत में उपयोग किये जाने वाले आक्सीकारकों में पोटैशियम परक्लोरेट तथा अमोनियम परक्लोरेट मुख्य होते हैं। जैसे ही आतिशबाजियों में कवच पर आग लगायी जाती है तो ईंधन व ऑक्सीकारक 2200^0 से 3000^0 से. ताप के बीच आपस में क्रिया करते हैं, जिससे आवाज होती है। आतिशबाजी के कवच में प्रयुक्त होने वाला दूसरा मुख्य रचक 'गन पाउडर' या आग्नेय चूर्ण होता है, जो कवच को आकाश की ओर धकेलने तथा ऊपर हवा में विस्फोट करने के लिए प्रयोग किया जाता है। यह गन पाउडर साल्टपीटर (पोटैशियम नाइट्रेट) गंधक तथा चारकोल का बना मिश्रण होता है। इसी प्रकार अनार के लिए पीली रेत तथा सीटी के लिए पोटैशियम पिकरेट को जलाया जाता है। इन आतिबाजियों को रंगीन बनाने के लिए पोटैशियम पिकरेट को जलाया जाता है। इन आतिशबाजियों को रंगीन बनाने के लिए अन्य कई रासायनिक यौगिकों को भी मिलाया जाता है; यथा - स्ट्रांशियम कार्बोनेट से लाल, एल्यूमीनियम से चमकदार सफेद, बेरियम नाइट्रेट अथवा क्लोरेट से हरा, ताम्र लवणों तथा क्लोरीन से नीला, सोडियम से पीला तथा लौह से नारंगी रंग बनाया जाता है। आतिशबाजी में लगाया जाने वाला कागज जिसे 'टच पेपर' कहते हैं, पोटैशियम नाइट्रेट में अच्छी तरह भिगो दिया जाता है। इनमें आर्सेनिक तथा एंटिमनी के यौगिक चमकदार सफेद रोशनी देकर जलते हैं।

अब वनस्पति दूध भी

वनस्पति दूध विशेषकर मूंगफली, सोयाबीन, गाजर, शकरकंद, चुकंदर, पात गोभी तथा मटर इत्यादि से बनाया जाता है। ब्रिटेन के एक वैज्ञानिक डॉ. फ्रेंकलिन ने सिद्ध कर दिया है कि वे लगभग सभी हरी वनस्पतियों से दूध व दही तैयार कर सकते हैं। हमारे देश में खाद्य प्रौद्योगिकी संस्थान, मैसूर ने भी मूँगफली से दूध बनाया है। इसके लिए मूँगफली को पानी में भिगोकर छिलके उतारकर बारीक लुगदी बनाते हैं तथा इसको सोडियम बाइकार्बोनेट वाले गरम पानी में लगभग दस मिनट भिगो देते हैं। इसके पश्चात निश्चित मात्रा में पानी मिलाकर दूध जैसा तरल बना लेते हैं तथा छान भी लेते हैं। थोड़ी मात्रा में नमक, चीनी व वनस्पति चरबी मिलाकर यह दूध तैयार कर लिया जाता है। मूँगफली का दूध बहुत पौष्टिक होता है तथा इसकी आइसक्रीम भी बनाई जा सकती है।

एल्यूमीनियम के बर्तन हानिकारक

आजकल घरों में एल्यूमीनियम के बर्तनों तथा उससे बने अन्य सामानों का प्रचलन काफी बढ़ गया है। ये बर्तन हल्के, सस्ते, जंगरहित तथा प्रचुरता में उपलब्ध हैं। अभी हाल ही में विश्व भर में एल्यूमीनियम धातु के इस्तेमाल पर हुए अनुसंधान से कुछ ऐसे तथ्य सामने आये हैं जिससे ज्ञात होता है कि खाने-पीने के बर्तन के रुप में काम आनेवाली यह धातु मानव के स्वास्थ्य में विष घोल रही है।

वस्तुतः एल्यूमीनियम एक बहुत ही क्रियाशील धातु है। यह वायु में विद्यमान आक्सीजन से शीघ्र तथा सरलता से संयोग करके एल्यूमीनियम ऑक्साइड में बदल जाती है, जो अत्यधिक पतली परत के रुप में बर्तन की सतह पर जम जाती है तथा सफेद होने के कारण नजर भी नहीं आती। जब यह परत खट्टे या अम्लीय, लवणयुक्त या क्षारीय खाद्य-

पदार्थों से क्रिया कर उसमें तुरंत घुलकर भोजन के साथ हमारे शरीर में पहुँच जाती है तो अनेक रोग उत्पन्न करती है। आधुनिक अनुसंधानों द्वारा यह प्रमाणित किया जा चुका है कि एल्यूमीनियम खाद्य पदार्थों में विद्यमान पोषक तत्वों; जैसे विटामिन, लवण आदि से क्रिया करके उनके पोषक तत्वों को निष्क्रिय बना देती है। अत: ऐसे बर्तनों में कभी नमक तथा सोडा नहीं डालना चाहिए तथा न ही एल्यूमीनियम के बर्तनों में चाय, दही, चटनी, सिरका, नींबू, फलों का रस, टमाटर, इमली इत्यादि ही डालना चाहिए। चाय में एल्यूमीनियम की काफी मात्रा घुल सकती है। फ्लोराइडयुक्त पानी को एल्यूमीनियम के बर्तन में उबालने पर पानी में काफी मात्रा में एल्यूमीनियम घुल जाता है।

चिकित्सकों के मतानुसार, उच्च एल्यूमीनियम युक्त भोजन खाने या चाय पीने से मस्तिष्क की कोशिकाएं नष्ट हो जाती हैं तथा डेमेंटिया नामक रोग हो जाता है। इस रोग में मनुष्य अपनी स्मरण-शक्ति खो देता है तथा उसके सोचने की शक्ति क्षीण हो जाती है। अत: एल्यूमीनियम के बर्तनों में खाना पकाना व चाय बनाना हानिकारक है।

आँसू की संरचना

सामान्य अवस्था में हमारी आँख में विद्यमान अश्रुग्रंथियां कुल मिलाकर सोलह घंटे के जागरण के दौरान 600-700 मिग्रा. आँसू स्रावित करती हैं। रासायनिक संघटन की दृष्टि से हमारे आँसुओं के द्रव में प्रोटीन, नाइट्रोजन, यूरिया, ग्लूकोज, सोडियम तथा पोटैशियम के क्लोराइड जैसे रसायन उपस्थित होते हैं। इसके साथ ही आँसुओं में लाइसोजाइम नामक एन्जाइम भी होता है। यह एन्जाइम आँखों में पहुँचने वाले हानिकारक जीवाणुओं को भी नष्ट करता है।

रोते समय आँसुओं को बहाने से मनुष्य को मानसिक तनाव से राहत मिलती है। हमारी आंखों के संपर्क में आनेवाली वायु में घुले कई उद्दीपकों के कारण भी अश्रुग्रंथियां उत्तेजित होकर अधिक आँसुओं का स्राव करती हैं। छींकने, खाँसने, वमन करते समय, तेज रोशनी देखते समय, अत्यधिक मिर्च मसाले युक्त भोजन खाने तथा अत्यधिक हँसी आने से भी आँखें आँसुओं से भर जाती हैं। अत्यधिक हर्ष या विषाद की अवस्था में हमारे मस्तिष्क के एक छोटे से हिस्से हाइपोथैलेमस में उत्पन्न आवेग ही अश्रुग्रंथियों को अधिक आंसू स्रावित करने के लिए उत्तेजित करते हैं।

डॉ. डी. डी. ओझा,
ब्रह्मपुरी, हजारी चबूतरा, जोधपुर - 342 001

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के व्यक्तिगत एवं संस्थागत वार्षिक सदस्यों से निवेदन है कि वे अपनी सदस्यता का नवीनीकरण यथासमय करा लें। नवीनीकरण में 3 माह से अधिक विलंब होने की दशा में उस अवधि में प्रकाशित हुए "वैज्ञानिक" के अंक प्रेषित करना संभव नहीं होगा। "वैज्ञानिक" की प्रति न मिलने पर सदस्यता क्रमांक, अंक तथा संपूर्ण पते के साथ व्यवस्थापक को निम्नलिखित पते पर लिखें।

इंद्र कुमार शर्मा,
व्यवस्थापक 'वैज्ञानिक'
पदार्थ संसाधन प्रभाग (MPD),
भा. प. अ. केंद्र (BARC), मुंबई - 400 085.

विज्ञान समाचार

भा. प. अ. केंद्र से :

1. सुदूर संचालित गामा मॉनीटर

भा. प. अ. केंद्र के विकिरण सुरक्षा प्रणाली प्रभाग (RSSD) ने आधुनिक उन्नत तकनीक का सफल उपयोग कर सुदूर संचालित गामा मॉनीटर का अभिकल्पन व निर्माण करने में सफलता प्राप्त की है। सीमित क्षेत्र में उपस्थित उच्च विकिरण को नापने में सक्षम यह यंत्र अधिक परास (वाइड रेंज) वाला एवं संहत (कॉम्पैक्ट) है। इसमें तकनीकी भौतिकी एवं प्रारूप इंजी. प्रभाग (टी. पी. पी. इ. डी.) भा. प. अ. केंद्र में निर्मित CsI(Tl) प्रस्फुरक (सिंटिलेटर) को प्रकाश वोल्टीय (फोटो वोल्टिक) सेल से जोड़ा गया है। संसूचक से उत्पन्न दिष्ट धारा (डी. सी.) को एक परिरक्षित केबिल द्वारा 100 मीटर दूर स्थित मापन युक्ति तक ले जाया जाता है। यह मॉनीटर किसी भी क्षेत्र में 1 से 1,00,000 r/h विकिरण तक के गामा विकिरणों को नाप सकता है।

अभी हाल ही में इस तरह के सुदूर संचालित, अधिक परास वाले दो मॉनिटर RAPS-कोटा को, उसके शीतलक चैनलों को बदलने के कार्यक्रम में इस्तेमाल हेतु दिये गये थे। इनका प्रयोग कर, रिएक्टर क्रोड में विभिन्न स्थलों पर, विकिरण डोज दर मापी गयी। विकिरण क्षेत्र से दूर रहकर विकिरण नापने की इन यंत्रों की क्षमता से, इस क्षेत्र में संलग्न कर्मचारियों को विकिरण-उद्भासन से बचाया जा सका। पावर स्टेशन के कर्मचारियों के अनुसार भविष्य में यह यंत्र स्टेशन की कार्य-प्रणाली को सुचारु रूप से चलाने में अत्यंत लाभदायक होगा। इससे पहले सायरस रिएक्टर में भी - RCB-BUGGY की मरम्मत के दौरान RCB-ताल में गामा विकिरण डोज दर नापने के लिए इसी तरह का यंत्र बहुत उपयोगी रहा था।

विभिन्न अनुप्रयोगों के लिए कई प्रकार के मॉनीटरों का विकास प्रकाश वोल्टीय और प्रस्फुरक संसूचकों को युग्मित (कपल्ड) कर, RSSD द्वारा किया जा रहा है। एक सेंटीमीटर वर्ग क्षेत्रफल वाले प्रकाश वोल्टीय संसूचक की संवेदनशीलता $2x10^{-11}$ एंपियर/r/hr (200 घनसेमी. वाले आयनित कक्ष की समतुल्य) होती है जो 1x1x3 घन सेमी. के CsI(Tl) प्रस्फुरक से जुड़ने पर बीस गुनी बढ़ जाती है। सर्वेमीटर के सुदूर प्रचालित रूप में प्रकाशवोल्टीय तथा प्रस्फुरक से निर्गत दिष्ट धारा को धारा से आवृत्ति परिवर्तक द्वारा आवृत्तियों में बदलकर दर्शित करते हैं। सुदूर यंत्र के इस रूप का परास तब सामान्य 1,000 r/h से 20,000 r/h तक हो जाता है।

2. हाइड्रोजन/ऑक्सीजन के उत्पादन हेतु किफायती विद्युदपघटक :

भा. प. अ. केंद्र में विकसित दाबीय विद्युदपघटक (प्रेसर इलेक्ट्रोलाइज़र) दाब-निस्यंदक (फिल्टर-प्रेस) प्रकार के विद्युत-अपघटनी (इलेक्ट्रोलाइटिक) घटकों पर आधारित हैं। इनमें उच्च निष्पादन वाले रंध्रमय निकल के इलेक्ट्रोड होते हैं। ये सेल उच्च धारा घनत्व पर कार्य करते हैं और कम ऊर्जा खर्च करते हैं जिससे वे संहत (कॉम्पैक्ट) व किफायती हाइड्रोजन / ऑक्सीजन उत्पादक बनाते हैं।

अत्यंत शुद्ध हाइड्रोजन (>99.8% - आयतन से) की मांगानुसार पूर्ति हेतु यह विद्युदपघटक विशेषत: अभिकल्पित किये गये हैं। कई रासायनिक प्रक्रियाओं में, वनस्पति घी के उत्पादन में, संश्लेषित मणियों के निर्माण में, अर्धचालकों व प्लास्टिक के बनाने में आवश्यक अतिशुद्ध हाइड्रोजन की पूर्ति इनसे की जा सकती है। टांका लगाने (ब्रेजिंग) व वेल्डन में लगने वाली हाइड्रोजन और ऑक्सीजन तथा मौसम-विज्ञान केंद्र पर हाइड्रोजन - स्रोत के रूप में इनका उपयोग हो सकता है।

संपूर्ण विद्युदपघटक दो पृथक इकाइयों का बना है : (1) गैस उत्पादक, व (2) विद्युत प्रदाय पैकेज। इसको चलाने के लिए शीतलक जल, लवण रहित जल तथा विद्युत की आवश्यकता पड़ती है। विद्युदपघटक इकाई में तीन अंग विद्युत - अपघट्य संचारण प्रक्रम, विद्युदपघटक मॉडयूल और गैस संभारण उपकरण हैं, जो एक के ऊपर एक लगे हैं।

यह विद्युतपघटक 10,000 ASM के धारा-घनत्व तक कार्य करता है। 8000 ASM व 80^0C पर चलाने पर इसकी ऊर्जा दक्षता 80% से ऊपर है। अत: इस उन्नत

विद्युतपघटक से कम ऊर्जा लगाकर कम दाम पर हाइड्रोजन /ऑक्सीजन उत्पन्न की जा सकती है ।

3. जलयानों में विलवणीकरण संयंत्र :

किसी भी समुद्रिक यान के पेय जल की विश्वसनीय आपूर्ति अनिवार्य है । यद्यपि कुछ छोटे जहाज, अपने भंडारण पात्रों में तटों से पेय जल भर सकते हैं, फिर भी अधिकांश जलयानों पर पेयजल उत्पादक संयंत्र लगाये जाते हैं । यदि जहाज बार-बार किनारे पर नहीं लग सकता है तो उसके जल-भंडारण पात्रों का आपेक्षित आमाप (साइज) जहाज़ पर उपलब्ध सीमित जगह की तुलना में बड़ा लगता है । विशेषतः नौसेना के जहाजों में यह समस्या उग्र हो जाती है, क्योंकि उनमें यात्री जहाजों की तरह अधिक मात्रा में पेय जल तो लगता ही है, और वे दीर्घ काल तक तट पर भी नहीं आ पाते हैं ।

पेय जल उत्पादक, समुद्री जल को आवश्यक पेय जल में परिवर्तित करते हैं । देश की विभिन्न जहाजी कंपनियों के बहुत सारे जहाज चल रहे हैं तथा और कई जहाज अभी आने वाले हैं । अभी तक, इन सारे जहाजों में (नौसेना के जहाजों समेत) आयातित पेय जल उत्पादक लगाये गये हैं । यदि देश में ही इनका उत्पादन कर, भविष्य की मांग को पूरा कर सकें तो काफ़ी विदेशी मुद्रा बचायी जा सकती है । इन संयंत्रों का निर्यात भी किया जा सकता है ।

समुद्री जल से पेय जल प्राप्त करने की कई व्यावसायिक प्रक्रियाएं उपलब्ध हैं । इनमें से, वाष्पन और वाष्प संपीड़क चक्र पर आधारित विधियां ज्यादा प्रचलित हैं । पेयजल उत्पादक संयंत्रों का अभिकल्पन, भार व आमापन की कड़ी कसौटियों के अनुकूल तथा उनकी कार्यप्रणाली त्रुटिहीन होनी चाहिए । विशेषतः जबकि जहाज समुद्री यात्राओं में अधिकतर रहता हो ।

भा. प. अ. केंद्र में विकसित संयंत्र मूलतः निम्न तापीय वाष्पन-प्रक्रिया का उपयोग करता है । इसमें कम दाब वाली भाप (भाप से चलने वाले जहाज़ में) या मुख्य इंजिन का शीतलक जल (डीजल जहाजों में) तापीय माध्यम कार्य करता है । दूसरे माध्यम का एक और लाभ मुख्य इंजिन के शीतलक जल का पेयजल उत्पादक के तापीय चक्र में आवश्यक सीमा तक ठंडा हो जाना है । पेयजल उत्पादक के मुख्यतः तीन भाग होते हैं : तापक, पृथक्कारक व द्रवणित्र । तापक कक्ष में उर्ध्वाधर नलिकाएं होती हैं । समुद्री जल, संयंत्र में नलिकाओं में नीचे से प्रवेश करता है तथा ऊपर से बाहर निकलते - निकलते आंशिक रूप से वाष्पीकृत हो जाता है । जल और वाष्प का मिश्रण नलिकाओं से बाहर निकलता है तो वाष्प उर्ध्वाधर कोष्ट में ऊपर उठकर, वहां स्थित क्षैतिजिक नलिका गुच्छ में प्रवेश कर उन नलिकाओं के बाहर द्रवित होकर पेय जल बन जाती है । (इन नलिकाओं के भीतर बहता समुद्री पानी इन्हें ठंडा रखता है ।) उत्पादित पेय जल को पंप कर बाहर निकाल लेते हैं ।

4. अपशिष्ट पदार्थों से उच्च श्रेणी का पेक्टिन :

पेक्टिन का इस्तेमाल कई खाद्य सामग्रियों के बनाने में जेलीकारक और प्रगाढ़क के रूप में होता है । चूंकि पेक्टिन शर्करा युक्त अम्लीय घोल में जेली बन जाती है अतः इसका उपयोग प्रायः जैम, जैली और मारमालेड बनाने में नियमित रूप से होता है । खाद्य एवं भेषज उद्योगों में, इसके अलावा भी, पेक्टिन के कई अन्य उपयोग हैं । वसा के बदले इसका उपयोग वांछित माना गया है ।

सिट्रस फलों को संसाधित करने वाले उद्योगों के अपशिष्टों में, एक बहुत बड़ा अंश, फलों के छिलकों का होता है । इस प्रक्रिया का प्रयोग कर इन छिलकों से, अधिक दाम वाला उत्पाद, पेक्टिन बना सकते हैं । इससे उच्च गुणवत्ता वाले पेक्टिन के राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि तो होगी ही, पेक्टिन रहित अपशिष्ट का पशु-चारे के रूप में उपयोग भी हो सकेगा ।

प्रयोगशाला स्तर पर प्रक्रिया के निम्न चरण है :

1. कच्चे माल को तैयार करना
2. उचित माध्यम में पेक्टिन का निष्कर्षण
3. उचित घोलक द्वारा माध्यम से पेक्टिन को अलग करना
4. पेक्टिन को सुखाना व चूर्ण बनाना, तथा
5. उसे डिब्बा बंद करना

भा. प. अ. केंद्र में विकसित इस विधि में पेक्टिन की उपलब्धि सूखे छिलकों के भार की लगभग 15% है और उत्पादित पेक्टिन का ग्रेड > 200 है। इस पेक्टिन का तत्वात्मक विश्लेषण, खाद्य पदार्थों में मिलावट की रोकथाम के मानदों के अनुसार है।

प्रस्तुति : डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला,
संपादक "वैज्ञानिक",
रसायनिकी प्रभाग, भा. प. अ. केंद्र,
मुंबई - 400 085

अन्य समाचार

1. फल-सब्जी खायें, हृदय रोग से बचें :

अमेरिकी शोधकर्ताओं ने अपनी रिपोर्ट में चेतावनी दी है कि भोजन में वसा या चर्बी की मात्रा कम करने और फल व सब्जियों की मात्रा बढ़ाने से हृदयरोग, कैंसर और अन्य कई तरह की भयानक बीमारियों से बचा जा सकता है। राष्ट्रीय अनुसंधान परिषद की एक समिति ने एक अध्ययन रिपोर्ट जारी की है जिसमें बताया गया है कि एक निश्चित स्तर तक वसा और कोलेस्ट्रॉल की मात्रा कम करने से धमनी हृदय रोग का खतरा 20 प्रतिशत कम किया जा सकता है। रिपोर्ट में विशेष प्रकार के सादे भोजन की सिफारिश करते हुए बताया गया है कि जिन देशों में खान-पान इस प्रकार है वहाँ भोजन से होने वाले कैंसर का खतरा अमेरिका की तुलना में लगभग आधा है। रिपोर्ट में हिदायत दी गयी है कि औसत स्वस्थ व्यक्ति को प्रतिदिन अपने शरीर के वजन के हिसाब के एक किलोग्राम वजन के पीछे 1:6 ग्राम से अधिक प्रोटीन नहीं लेना चाहिए। मांस, मछली और दूध में पाये जाने वाले प्रोटीन की अधिक मात्रा से कई प्रकार के कैंसर और हृदय रोग हो सकते हैं। समिति ने चेतावनी दी है कि अल्कोहॉल और छह ग्राम से अधिक शुद्ध नमक का सेवन न करें तथा दंतक्षय से बचने के लिए फ्लोराइडयुक्त पानी को पियें।

2. अब कटी-फटी त्वचा गोंद से चिपकेगी

जी हाँ शीर्षक पढ़कर आप अवश्य चकित हो गये होंगे। अगर आपकी त्वचा यदि कट-फट जाती है तो फिक्र की कोई बात नहीं। अब कटी - फटी त्वचा एक खास गोंद से ठीक उसी तरह चिपकाई जा सकेगी, जैसे कागज चिपकाये जाते हैं। यह खास गोंद "सुपर ग्लू" है जिसे ब्रिटेन के ब्रैडफोर्ड विश्वविद्यालय में बनाया गया है। यह गोंद कटी त्वचा या जख्म को डॉक्टरी टांकों के सिलने के कष्टदायक तरीकों से मुक्ति दिलायेगी। इस गोंद को कटी-फटी त्वचा के किनारों पर अति सूक्ष्मतम मात्रा में लगाना होता है और यह गोंद कुछ ही क्षणों में सूखकर त्वचा को चिपका देता है। इस गोंद को लगाने से जख्म पकने या सड़ने, अथवा किसी भी अन्य संक्रमण की संभावना नहीं होती है। इस गोंद के इस्तेमाल में न केवल समय की बचत होती है बल्कि परंपरागत टांकों से यह सस्ता भी पड़ता है।

नयी दिल्ली स्थित ब्रिटिश उच्चायोग की ब्रिटिश सूचना सेवा की पत्रिका "ब्रिटिश समीक्षा" के अनुसार इस "सुपर ग्लू" की उन्नत किस्म और इसे नपी-तुली मात्रा में लगाने के लिए एप्लीकेटर भी बनाया गया है। इसे विश्वविद्यालय के प्रोफेसर टेली बेकर तथा डॉ. राबर्ट ने विकसित किया है तथा लोक्टाइट कंपनी ने इसके निर्माण का खर्च उठाया है।

3. अब रोबोट फल तोड़ेगा :

चौंकिए मत ! यदि आप पेड़ पर चढ़ने से कतराते हैं, डरते हैं तो घबड़ाने की आवश्यकता नहीं है। आपके लिए बारह भुजाओं वाला यह रोबोट पेड़ पर चढ़ेगा, बगैर चखे केवल पके-पके फल तोड़ेगा, डलियों में डालेगा और पेड़ से नीचे उतर जायेगा। यह रोबोट पूरी तरह से कंप्यूटरीकृत है। माउंट डोरा के वैज्ञानिक राय सी. हारपेल के अनुसार –

'यह समझदार रोबोट फलदार पेड़ों से केवल पके हुए फल ही तोड़ता है। इस रोबोट की एक से लेकर बारह तक बाँहें होती हैं जो पेड़ों से पके फल चुनती हैं। रोबोट की बाँह के सिरे पर रंगीन वीडियो कैमरा लगा होता है जो पके फल के रंग को गहरा नारंगी दिखाता है। इसके

अतिरिक्त इसकी बाँह पर एक अन्य यंत्र भी लगा होता है जो फलों के बीच की दूरी के बारे में जानकारी देता है। पका फल देखते ही रोबोट की बाँह उसकी ओर बढ़ती है, फल तोड़कर उसे एक टोकरीनुमा डिब्बे में इकट्ठा करती जाती है।

4. सिरदर्द की दवा गर्भपात रोकने में भी कारगर

महिलाओं में गर्भपात एक गंभीर समस्या है। इससे निजात दिलाने में सिरदर्द की दवा एस्प्रिन जो दुनिया भर में सिरदर्द से छुटकारा पाने के लिए इस्तेमाल की जाती है पूरी तरह से गर्भपात रोकने में कारगर पायी गयी है।

ब्रिटिश शोधकर्ताओं के अनुसार गर्भपात की शिकार महिलाओं में से 19 से 70 प्रतिशत महिलाएं एस्प्रिन तथा हेपारिन का सेवन करके अपनी इस समस्या से निजात पा सकती हैं। हेपारिन रक्त के थक्का बनने से रोकती है। लंदन के थॉमस अस्पताल के शोधकर्ताओं के एक दल ने अपने गहन अध्ययन के दौरान पाया है कि एस्प्रिन के इस्तेमाल से ह्यूगेज सिंड्रोम से पीड़ित महिलाओं में प्रसव की संभावना 19 से 70 प्रतिशत बढ़ सकती है।

ह्यूगेज सिंड्रोम के कारण महिलाओं के शरीर में रक्त जमने तथा अचानक गर्भपात होने का खतरा बढ़ जाता है। इस सिंड्रोम का पता प्रसिद्ध चिकित्सक ग्राहम ह्यूगेज ने लगाया था।

5. टमाटर का नियमित सेवन-कैंसर के बचाव में सहायक

विटामिन "सी" की प्रचुरता के लिए मशहूर टमाटर के नियमित सेवन से कई प्रकार के कैंसरों से बचा जा सकता है। उत्तरी इंग्लैण्ड के कील विश्वविद्यालय में रसायन विज्ञान के अध्यक्ष प्रोफेसर जॉर्जट्रस्कॉट ने अपने शोध के जरिये स्पष्ट किया है कि टमाटरों को लाल रंग प्रदान करने वाले रसायन लाइकोपीन हमारी कोशिकाओं को तम्बाकू एवं डीजल के धुंए से उत्पन्न नाइट्रोजन डाइऑक्साइड के दुष्प्रभावों से बचाता है। इससे पहले के अनेक शोध कार्यों से यह साबित हो चुका है कि नाइट्रोजन डाइऑक्साइड मानव कोशिकाओं को कैंसरग्रस्त बना देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

"लाइकोपीन कैरोटेनॉयडस" नामक रसायनों के समूह का एक सदस्य है, जिसका मानव शरीर पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। इसी समूह का सबसे जाना-पहचाना रसायन "बीटा-केरोटीन" है जो आमतौर पर मुख्य रूप से गाजर, ब्रोकली और खरबूजों में पाया जाता है।

आम में पाया जाने वाला बीटा कृप्टॉक्सेन्थिन और जेली सलाद एवं शीतल पेयों में उपयोग किया जाने वाला कैन्थासेनिथिन शामिल है। हाल ही में ब्रिटेन और अमेरिका में किये गये अनेक परीक्षणों से यह बात सामने आयी है कि बीटा के रोटिन मानव कोशिकाओं को क्षतिग्रस्त होने से बचाता है, और यह शरीर में पहुँचकर विटामिन "ए" में परिवर्तित हो जाता है। अमेरिका और यूरोप के वैज्ञानिकों की शोध रिपोर्ट में पाया गया है कि बीटा कैरोटिन से बड़ी आँत और मूत्राशय के कैंसर को रोका जा सकता है।

प्रोफेसर ट्रस्कॉट अपने शोध के जरिये यह स्पष्ट करने में सफल रहे हैं कि कैंसर की रोकथाम में टमाटर में पाये जाने वाले लाइकोपीन की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण है। बर्लिन के हम्बोल्ट विश्वविद्यालय के डॉक्टर फ्रिट्ज भॉम के साथ शोधकार्य करते हुए प्रोफेसर ट्रस्कॉट ने यह प्रमाणित भी किया है कि बीटा-केरोटिन की तुलना में लाइकोपीन तीन से चार गुना अधिक प्रभावी होता है। प्रोफेसर ट्रस्कॉट का कहना है कि धूम्रपान और वायु प्रदूषण के कारण जिन लोगों को कैंसर होने का ज्यादा खतरा है, वे अपने भोजन में कच्चे टमाटर अथवा उसके जूस से आने वाली घातक बला को टाल सकते हैं। साथ ही उन्होंने यह भी चेतावनी दी है कि अत्यधिक मात्रा में टमाटरों का सेवन त्वचा को थोड़ा सांवला बना सकता है। परंतु निश्चित रूप से लोग कैंसर के मरीज बनने की बजाय सांवला दिखना ज्यादा पसंद करेंगे।

प्रस्तुति : शाह आलम सिद्दीकी,
रेलवे ट्रांजिट हाउस नं. 15,
बिछिया रेलवे कॉलोनी,
गोरखपुर (उत्तर प्रदेश) - 273012

संगोष्ठी समाचार

1. नोबेल पुरस्कार : किसे और क्यों ?

वर्ष 1996 के नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिकों एवं उनके कार्यों के बारे में जानकारी देने के उद्देश्य से हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद ने 15 जनवरी 1997 को एक अर्ध दिवसीय सेमिनार का आयोजन किया। इसके अंतर्गत रसायनिकी और फीजियोलॉजी एवं मेडिसिन के वर्ष 1996 के नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिकों के कार्यों पर निम्नलिखित वक्ताओं द्वारा प्रकाश डाला गया।

वक्ता	विषय-क्षेत्र	वार्ता का शीर्षक	नोबेल पुरस्कार विजेता
1. डॉ. शैलेन्द्र कुमार कुलश्रेष्ठ, अध्यक्ष, संरचनात्मक रसायनिकी अनुभाग, रसायनिकी प्रभाग, भा. प. अ. केंद्र, मुंबई	रसायनिकी	फुल्लरीन की खोज	प्रो. राबर्ट कर्ल (जू.), प्रो. रिचर्ड स्मेल्ली (अमरीका), प्रो. हेरॉल्ड क्रोटो (ब्रिटेन)
2. डॉ. कृष्णा बी. सैनिस, अध्यक्ष, इम्यूनोलॉजी अनुभाग, सैल बायोलॉजी प्रभाग, भा. प. अ. केंद्र, मुंबई	फीजियोलॉजी एवं मेडिसिन	कोशिकाओं द्वारा मध्यस्थ असंक्राम्य (इम्यून) सुरक्षा की विशिष्टता संबंधी खोज	प्रो. पीटर डोहटी (ऑस्ट्रेलिया), प्रो. रोल्फ ज़िंकर नागल (स्विटजरलैंड)

समारोह की अध्यक्षता रिएक्टर वर्ग तथा तकनीकी हस्तांतरण एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंध वर्ग के निदेशक श्री अनिल कुमार आनंद ने की। उन्होंने इस कार्यक्रम की लोकप्रियता पर संतोष व्यक्त करते हुए बताया कि हमें परिषद द्वारा प्रकाशित पत्रिका "वैज्ञानिक" को दूर दराज के स्कूल-कॉलेजों में पहुंचाने के लिए विशेष प्रबंध करने चाहिए। परिषद अध्यक्ष डॉ. सी. के गुप्ता ने श्री आनंद तथा अन्य अतिथियों/श्रोताओं का स्वागत करते हुए परिषद की बहुआयामी गतिविधियों का उल्लेख किया तथा इस कार्यक्रम को पिछले पांच वर्षों से निरंतर सफलतापूर्वक आयोजित करने के लिए विशेष रूप से डॉ. कोठियाल की प्रशंसा की। संयोजक डॉ. कोठियाल ने वक्ताओं का परिचय कराने के साथ साथ उपस्थित सभी श्रोताओं/अतिथिओं का धन्यवाद ज्ञापन किया।

प्रस्तुति : **डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल,**
संयोजक

2. फसलोत्पादन एवं पशु पालन पर बहु आयामी शोध के माध्यम से औद्योगिक विकास की संभावनाएं :

राष्ट्र भाषा हिंदी में विज्ञान की शोध उपलब्धियों को किसानों तक पहुंचाने के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान समिति, करनाल एवं उ. प्र. गन्ना शोध परिषद, शाहजहांपुर द्वारा "फसलोत्पादन एवं पशु पालन पर बहु आयामी शोध के माध्यम से औद्योगिकी विकास की संभावनाएं" विषय पर एक राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी 13 से 15 जनवरी 97 तक शाहजहांपुर उत्तर प्रदेश में आयोजित की गयी। संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए मुख्य अतिथि, उ. प्र. गन्ना विकास एवं चीनी उद्योग सचिव श्री सिद्धार्थ बेहुरा ने उच्च शर्करायुक्त शीघ्र पकने वाले, रोग रोधी व अधिक उपज देने वाले गन्ने के विकास एवं प्रसार को समय की आवश्यकता बताया। शाहजहांपुर के जिलाधीश श्री भागवत प्रसाद मिश्र ने कहा कि गन्ना देश के सबसे बड़े प्रदेश उ. प्र. की

अर्थव्यवस्था की रीढ़ है तथा गन्ने की ऐसी प्रजातियों के विकास की आवश्यकता है जिनमें शर्करा की मात्रा अधिक हो। अध्यक्षीय भाषण में लखनऊ के गन्ना शोध संस्थान के निदेशक डॉ. सीताराम मिश्र ने कहा कि कृषि वैज्ञानिकों को अपने शोध लेख हिंदी भाषा में लिखने चाहिए जिससे जन सामान्य भी उनके शोध से लाभ प्राप्त कर सकें।

समिति के संस्थापक श्री आर. डी. गोयल [कृषि अनुसंधान संचार केंद्र करनाल (हरियाणा)] ने कहा कि वैज्ञानिकों को अपनी शोध परियोजनाओं के बारे में तथा परिणामों को हिंदी में लिखने के लिए प्रोत्साहित करना, कृषि शोध की नयी तकनीकी को हिंदी भाषा में किसानों तक पहुंचाना और अन्य भाषाओं की कृषि शोध पुस्तकों का अनुवाद हिंदी में करना समिति के उद्देश्य हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान समिति के सचिव डॉ. हरी सिंह कुशवाह [कृषि महाविद्यालय, ग्वालियर] ने बदलते आर्थिक परिवेश में कृषि तथा पशु उत्पादन की समस्याओं पर बल दिया। कार्यक्रम का संचालन डॉ. सुरेश मिश्र, समिति सदस्य, शाहजहांपुर ने किया तथा डॉ. एम. एल. अग्रवाल, संयुक्त निदेशक, शाहजहांपुर एवं उपाध्यक्ष, भारतीय कृषि अनुसंधान समिति ने आभार व्यक्त किया।

संगोष्ठी के तकनीकी सत्रों में चीनी उद्योग एवं गन्ना विकास पर 37 तथा फसलोत्पादन एवं कृषि उद्योग पर 19 शोध हिंदी में प्रस्तुत किये गये। इन शोध पत्रों में गन्ने की खेती में शस्य गुणों की उपयोगिता, गन्ने की प्रजातियों का विकास, फसल सुरक्षा, बीज एवं गुड़ उत्पादन तकनीकी, संरक्षण, गुणवत्ता एवं रख-रखाव इत्यादि महत्वपूर्ण पहलुओं के साथ ही सूचनाओं के त्वरित विस्तार एवं प्रसारण के संबंध में विचार विमर्श हुआ। संगोष्ठी में यह तथ्य प्रकाश में आया कि तकनीकी स्थानांतरण में रोग, कीट, पोषक तत्व एवं जाति प्रबंध महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं तथा उपज में इनके उपयोग से 10 से 40% तक की वृद्धि कृषकों के खेतों पर प्राप्त हुई है। इसके अतिरिक्त विपरीत परिस्थितियों में गन्ने की संभावित खेती गुड़ की गुणवत्ता, भंडारण, दानेदार कीटनाशकों का प्रयोग, त्रिस्तरीय बीज कार्यक्रम के साथ-साथ म. प्र. एवं गुजरात में गन्ना उत्पादन का आर्थिक विश्लेषण तथा उद्योगों की आवश्यकता एवं प्रबंधन पर विस्तार से चर्चा कर चीनी उद्योग हेतु महत्वपूर्ण संकेत दिये गये। अन्य फसलों जैसे सोयाबीन, उड़द, बाजरा, सरसों इत्यादि में जैविक उर्वरकों की उपयोगिता तथा पट्टी विधि से जल का समुचित उपयोग किये जाने की संस्तुति की गयी।

कृषि वानिकी पद्धति कृषकों के खेतों पर अपना कर इससे संबंधित लघु उद्योग स्थापित होने की संभावनाएं व्यक्त की गयीं। पशु पालन, सुअर पालन एवं मत्स्य पालन की विधाओं की जानकारी कृषकों तक पहुंचाने के लिए उन्हें प्रशिक्षित करने पर बल दिया गया।

प्रस्तुति : **हरी सिंह कुशवाह**, सचिव,
भारतीय कृषि अनुसंधान समिति,
एफ-5 कृषि कॉलोनी, ग्वालियर 474 007

विज्ञान-कविता

ऐ वैज्ञानिक! नवयुग ला दो

ऊर्जा औ उद्योग, चिकित्सा
रक्षा, खनन, परिवहन में भी -
कंप्यूटर की क्रांति जगा दो । ऐ वैज्ञानिक. . .
भूख, गरीवी, मिटे अशिक्षा,
जन्में छप्पर में वैज्ञानिक -
ऐसा कुछ जागृति स्वर ला दो । ऐ वैज्ञानिक. . .
नवल उपग्रह की किरणों से,
शिक्षा, खेल, चित्रपट में भी -
मानवता की ज्योति जला दो । ऐ वैज्ञानिक. . .
वैज्ञानिक दर्शन की गंगा,
कला, साहित्य संगीत वने यहां -
रूढ़ि मिटा दो, ज्ञान प्रभा दो । ऐ वैज्ञानिक. . .

रामगोपाल परिहार
हिंदी विभागाध्यक्ष,
जवाहर नवोदय विद्यालय हदगढ़,
क्योंझर (उड़ीसा) - 273 001

पुस्तक समीक्षा :

नाभिकीय ऊर्जा एवं नाभिकीय ईंधन

भा. प. अ. केंद्र के 'पदार्थ वर्ग' के निदेशक डॉ. सी. के. गुप्ता एवं इसी वर्ग में 'अभिकल्पन एवं संविरचन अनुभाग' के अध्यक्ष श्री राम निवास आर्य द्वारा हिंदी में **'नाभिकीय ऊर्जा एवं नाभिकीय ईंधन'** विषय पर लिखित पुस्तक अपनी किस्म की पहली पुस्तक है। इसमें नाभिकीय ऊर्जा के विभिन्न पहलुओं का उल्लेख किया गया है। विषय की पूर्णता का ध्यान रखा गया है। प्रारंभिक जानकारी से वर्तमान स्थिति के बारे में प्रकाश डाला गया है। विषय का विकास एक क्रम बद्ध तौर पर किया गया है तथा सभी जानकारियां आठ अध्यायों में समाहित की गयी हैं। हर अध्याय के प्रारंभ में सारांश देकर पाठक के मन में जिज्ञासा उत्पन्न करने तथा अंत में उपसंहार के माध्यम से आत्मसात की अनुभूति कराने का प्रयास काफी सराहनीय है। विषय को समझाने के लिए सरल भाषा, तकनीकी शब्दों का अंग्रेजी रूप, सुस्पष्ट चित्रों इत्यादि का प्रयोग किया गया है। विषय की गूढ़ता को देखते हुए कुछ स्पष्टीकरण एवं परिभाषाओं को यथावश्यक जगहों पर दिया गया है। पाठक के अध्ययन के दौरान प्रवाह में गतिरोध उत्पन्न न हो शायद इस उद्देश्य से कई स्थनों पर स्पष्टीकरण की पुनरावृति देखने को मिलती है।

संपादकीय दृष्टि से पुनरावृति के अतिरिक्त कुछ कमियां देखी गयी हैं। शब्दों तथा मात्रकों के प्रयोग में समानता नहीं रखी गयी है। अध्याय 2, 3, 6 में 'संबंध' तथा 1 और 4 में 'सम्बन्ध' का प्रयोग है। कहीं पर अंग्रेजी शब्द को प्रमुख रखकर हिंदी रूपांतरण को कोष्ठक (पृष्ठ 303) में तथा कहीं इसका विपरीत है (पृष्ठ 149)। एक ही पृष्ठ में अंग्रेजी स्पष्टीकरण की पुनरावृति अनावश्यक लगती है जैसे पृष्ठ 303 तथा 304 में UNH, IDR, ADU, DC इत्यादि। मात्रकों के चिन्हों के प्रयोग में समानता का अभाव है। उदाहरण के लिए : पृष्ठ 7, 30, 101, 296 में Kg तथा पृष्ठ 42, 96, 101 तथा अन्यत्र kg (सही kg), पृष्ठ 48, 296 में KWh जबकि सही रूप kWh है। इसी प्रकार K_{∞} (पृष्ठ 95), C^{12} तथा C-12 (पृष्ठ 43), KeV (पृष्ठ 61, 66), keV (पृष्ठ 45, 58, तथा अन्यत्र) इत्यादि अन्य असमानताएं भी पुस्तक में मौजूद हैं।

बहरहाल, विषय वस्तु तथा प्रस्तुतीकरण के आधार पर इसे एक उत्कृष्ट पुस्तक माना जा सकता है। हिंदी पाठकों के लिए यह एक उपयोगी पुस्तक सिद्ध होगी। हिंदी में विज्ञान साहित्य सृजन की दिशा में लेखकों का यह उल्लेखनीय योगदान कहा जा सकता है।

प्रकाशक : वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, भारत सरकार, नयी दिल्ली एवं राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर-4
प्रकाशन वर्ष : 1996, **पृष्ठ :** 410,
मूल्य : मात्र 172/- रुपए
पुस्तक मिलने का पता : विक्रय अधीक्षक, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी
प्लॉट नं. 1, झालाना संस्थानिक क्षेत्र,
टेलीफोन : 511129, 510341

समीक्षक : **डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल**
प्रमुख संपादक - वैज्ञानिक"
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई - 400 085

"परिषद अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष सम्मानित"

'राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी' झालाना संस्थानिक क्षेत्र, जयपुर द्वारा वर्ष 1995 से 1997 तक प्रकाशित पुस्तकों के लेखकों को सम्मानित करने हेतु 27 मार्च 1997 को एक समारोह आयोजित किया गया। इस समारोह में 'नाभिकीय ऊर्जा एवं नाभिकीय ईंधन' पुस्तक के लेखकों, डॉ. सी. के. गुप्ता, अध्यक्ष, हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, भा. प. अ. केंद्र तथा श्री राम निवास आर्य, उपाध्यक्ष, हिं. वि. सा. प., भा. प. अ. केंद्र, मुंबई को श्री ललित किशोर चतुर्वेदी (उच्च शिक्षा मंत्री) के कर कमलों द्वारा प्रशस्ति पत्र प्रदान किये गये।

राष्ट्रीय सुरक्षा में आत्म निर्भरता की महत्ता : (लेख-संग्रह)

गत वर्ष, सितंबर 26-27, 1996 को बैंगलूर में द्वि-दिवसीय अखिल भारतीय तकनीकी संगोष्ठी (हिंदी) का आयोजन किया गया । संगोष्ठी का आयोजन 'रक्षा अनुसंधान तथा विकास संगठन' की बैंगलूर स्थित प्रयोगशालाओं / स्थापनाओं तथा भारतीय ऐरोनॉटिकल सोसायटी के संयुक्त तत्वावधान में किया गया । इस तकनीकी संगोष्ठी का विषय था - 'राष्ट्रीय सुरक्षा में आत्म निर्भरता की महत्ता' । इसके अंतर्गत भारतीय वैज्ञानिकी के क्षेत्र में नवीन उपलब्धियाँ, उड्डयनिकी, युद्ध शीर्ष प्रतिरूपण, धातुकी, वैज्ञानिकी के क्षेत्र में मानकीकरण आदि से संबंधित शोधकार्य प्रस्तुत किये गये । प्रस्तुत शोधपत्रों को एक लेख-संग्रह / संचयिका के रूप में प्रकाशित भी किया गया । इस लेख-संग्रह के पहले भाग में वैमानिकीय अध्ययन, दूसरे में आयुध प्रणाली अध्ययन, तीसरे में धातुकी अध्ययन तथा चौथे में अन्य विषयों से संबंधित लेखों का समावेश है ।

वायुयानों के अभिकल्पन, निर्माण में हमेशा ही भार घटाने की बात प्रमुख होती है । अतः ऐसे पदार्थों और संरचनाओं की खोज निरंतर जारी रहती है, जिनकी सामर्थ्य / भार और दृढ़ता / भार का अनुपात कहीं ज्यादा हो । इस श्रेणी में रेशा प्रबलित पदार्थ शामिल हैं, जिनके प्रयोग से निर्मित संरचनाएं उड़ान भरने में सक्षम हैं । रेशा प्रबलित पदार्थों के मुख्य घटक रेशा तथा बंधक पदार्थ होते हैं । संरचना में आवश्यकतानुसार कार्बन रेशे, काँच रेशे, केवलार - रेशे आदि का प्रयोग किया जाता है । प्रथम खंड के प्रथम लेख में रेशा प्रबलित संरचनाओं की उड़ान - धारण योग्यता से संबंधित विविध पहलुओं पर चर्चा की गयी है । 'राकेट तथा प्रक्षेपास्त्र परीक्षण' लेख में अंतरिम परीक्षण परिसर, चांदीपुर, की कार्य प्रणाली का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है । 22 मई 1989 को 'अग्नि' का प्रथम सफल परीक्षण 'प्रक्षेपास्त्र परीक्षण केंद्र, चांदीपुर' में किया गया । राकेट तथा प्रक्षेपास्त्र क्या हैं ? परीक्षण-केंद्रों का चुनाव करते समय किन-किन बातों पर ध्यान दिया जाता है ? प्रक्षेपास्त्रों का परीक्षण कैसे किया जाता है ? इसके लिए किन संसाधनों की जरूरत होती है ? - आदि से संबंधित जानकारी लेख में दी गयी है । 'पैराशूट प्रौद्योगिकी : आत्मनिर्भरता के बिल्कुल समीप' नामक लेख में 'हवाई वितरण अनुसंधान तथा विकास संस्थापन आगरा' द्वारा विकसित पैराशूट प्रणालियों का विवरण दिया गया है । स्वदेशीकरण के सतत प्रयासों के फलस्वरूप अब देश में ही अत्याधुनिक पैराशूट प्रणालियाँ बनायी जा रही हैं । आज की प्रत्येक पैराशूट प्रणाली पूर्णतया स्वदेशी है । अब इसका निर्यात भी हो रहा है । 'वैमानिकीय विकास संस्थापन एवं अनुरूपण तकनीक' लेख में वैमानिकीय विकास संस्थापन, बैंगलूर द्वारा विकसित अनुरूपकों का विवरण प्रस्तुत किया गया है । अनुरूपण वह तंत्र है, जिसमें किसी वास्तविक प्रणाली के व्यवहार को समझने के लिए प्रयोगशाला की परिस्थितियों में एक नमूना बनाया जाता है, और वास्तविक प्रणाली पर प्रयोग न करके उसके प्रतिरूप पर मूल प्रयोग किये जाते हैं । अब तक वैमानिक विकास संस्थापन द्वारा अजीत/किरण अनुरूपक, ह. ल. वि. अनुरूपक तथा वायु युद्ध अनुरूपक का विकास किया गया है । संस्थापन किसी भी विमान अथवा भू - वाहन हेतु अनुरूपक विकसित करने में सक्षम है ।

संचयिका के आयुध प्रणाली अध्ययन खंड में वायु रक्षा तोपों की कार्यक्षमता का आकलन, शेप्ड चार्ज एम्यूनीशन के लिए प्लास्टिक आबद्ध विस्फोटकों का विकास, ईंधन-वायुविस्फोटक : रक्षा आत्मनिर्भरता का एक महत्त्वपूर्ण चरण, सैनिकों के विरुद्ध उपयोग में लाये जाने वाले बंबों की घातक क्षमता, रेल पथ राकेट गाड़ी और इसका आयुध परीक्षण उपयोग, विस्फोट क्रियाशील कवच : संगणक प्रतिरूपण - आदि लेख संकलित हैं । वायुरक्षा तोपों की कार्यक्षमता के तुलनात्मक प्राचलिक अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि - तोपों की संचयी घात संभाव्यता परास और मानक विचलन के बढ़ने के साथ घटती है, परंतु दिये हुए समय में लक्ष्य पर दागे गये गोलों की गिनती के साथ बढ़ती है । चार तोपों की क्षमता मूल्यांकन में 30 मिमी. तोप सर्वश्रेष्ठ तथा उसके पश्चात 35 मिमी., 23 मिमी. तथा 40 मिमी. तोपों का स्थान है । शेप्ड चार्ज एक महत्त्वपूर्ण टैंक-भेदी युद्ध शस्त्र है ।

अब एक नयी श्रेणी के प्लास्टिक आबद्ध विस्फोटकों का विकास किया गया है, जिसमें 90-95% आर. डी. एक्स व एच. एम. एक्स उच्च शक्ति विस्फोटक विद्यमान हैं। प्लास्टिक आबद्ध विस्फोटक आर. डी. एक्स/टी. एन. टी. 60 : 40 से अधिक दक्ष हैं। ईंधन वायु विस्फोटक संबंधी लेख में भारत में इस अस्त्र प्रणाली के विकास की चर्चा की गयी है। यह एक ऐसी अस्त्र प्रणाली है, जिसमें वाष्पीकृत ईंधन एक विस्तृत क्षेत्र के ऊपर फैलकर और वायु से मिश्रित होकर एक विस्फोटक मिश्रण बनाती है, जिसका स्वरूप बादल की तरह होता है। इस बादल का विस्फोट करने पर अत्यंत प्रबल विस्फोट तरंगें उत्पन्न होती हैं, जिनका विनाशकारी प्रभाव टी. एन. टी. से भी अधिक व्यापक होता है। 'सैनिकों के विरुद्ध उपयोग में लाये जाने वाले बंबों की घातक क्षमता' लेख में बंबों की घातकता को अधिकतम करने के लिए बंबों की संरचना में सुधार, विदेशों से शक्तिशाली बंब मंगा कर परीक्षण और अध्ययन से उनका देशीकरण, सैनिक, सैनिक गाड़ियों तथा अन्य लक्ष्यों को बंब-विस्फोट से सुरक्षित रखने के लिए संरचना में आवश्यक सुधार आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है। आयुध प्रौद्योगिकी में विकसित की जा रही वस्तुओं का गतिक परिस्थितियों में परीक्षण करने के लिए 'चरम प्राक्षेपिकी अनुसंधान प्रयोगशाला' चंडीगढ़ में एक 'रेल पथ राकेट गाड़ी' राष्ट्रीय परीक्षण सुविधा की स्थापना की गयी है। इस सुविधा का उपयोग चरम प्राक्षेपिकी, प्रक्षेपास्त्र, वायु प्राक्षेपिकी, वायु गतिकी, पर्यावरण संबंधी परीक्षण, पैराशूट आदि क्षेत्रों में किया जा रहा है। 'विस्फोटक क्रियाशील कवच : संगणक प्रतिरूपण' लेख में टैंक को सुरक्षित रखने के लिए नये प्रकार के कवच यानी 'विस्फोटक क्रियाशील कवच' के विकास के लिए अनेक बातों का सैद्धांतिक अध्ययन करके संगणक प्रतिरूपण तैयार करने का विवरण दिया गया है।

लेख-संग्रह के तीसरे खंड में धातुकी अध्ययन से संबंधित लेखों का समावेश है। 'लौह मिश्रधातुओं का वैमानिकी उपयोग हेतु स्वदेशीकरण' नामक लेख में 'सामरिक उड्डयन योग्यता केंद्र (पदार्थ)' में विकसित की जा रही विभिन्न लौह मिश्र धातुओं – मारेजिंग इस्पात, विशिष्ट स्टेनलेस, एच. आर. आदि के स्वदेशीकरण का विवरण दिया गया है। एक अन्य लेख में हैदराबाद स्थित रक्षा धातुकर्मीय अनुसंधान प्रयोगशाला तथा उसके सहयोगी संगठनों द्वारा विकसित सामरिक महत्त्व की विशेष धातुओं की चर्चा की गयी है। स्टेनलेस मारेजिंग इस्पात के विकास के विभिन्न चरणों तथा अंत:क्षेपण कार्य विधि का विस्तृत वर्णन किया गया है। 'कंचन कवच परीक्षण विधि – आत्मनिर्भरता की ओर एक महत्वपूर्ण कदम' लेख में रक्षा धातुकीय अनुसंधान प्रयोगशाला में खोजे गये कवच के परीक्षण की समस्या तथा उसके समाधान की चर्चा की गयी है। कंचन कवच युद्ध भूमि में टैंकों की सुरक्षा को बढ़ाने के लिए विशेष प्रकार की धातुओं के सामूहिक मिश्रण से बना एक अभेदी कवच है। इसके सही मूल्यांकन के लिए एक स्वदेशी तरीका खोज निकाला गया है। वैमानिकी पदार्थों की गुणवत्ता तथा परिपूर्णता की जाँच में प्रयुक्त पद्धति की जानकारी 'वैमानिकी पदार्थों का गुणात्मक परीक्षण' नामक लेख में दी गयी है। प्रारूप प्रमाणीकरण पद्धति अपना कर वैमानिकी पदार्थों का भरोसेमंद परीक्षण किया गया है। वैमानिकी पदार्थों के भार में एक किलोग्राम की कमी करने से पर्याप्त ईंधन की बचत की जा सकती है। ऐसा करके विदेशी मुद्रा की बचत की गयी है।

लेख-संग्रह के चौथे तथा अंतिम खंड में रक्षा सैनिकों पर पर्यावरण की प्रतिकूल स्थितियों में तनाव, मरु क्षेत्रीय आहार : औषधियुक्त एवं पौष्टिक, सूचना विज्ञान के क्षेत्र में डेसीडाक की महत्ता, वानस्पतिक छद्मावरण, ओजोन कवच की सुरक्षा, सांगणिक थल युद्ध क्रीड़ा, वायु में तरंग तथा उसके क्षतिकारक प्रभाव – इत्यादि विषयों से संबंधित लेखों का संचयन है।

लेख संग्रह का संपादन-कार्य प्रो. के. राजय्या, डॉ. वी. पी. सिंह तथा श्री रामकिशोर गुप्ता द्वारा किया गया है। हिंदी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन में रक्षा संस्थापनों का यह योगदान अति महत्त्वपूर्ण है।

प्रस्तुति : **डॉ. राज नारायण पांडेय,**
संपादक - 'वैज्ञानिक',
नाभिकीय कृषि प्रभाग,
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई - 400 085

कुछ फूल : कुछ कांटे

वैज्ञानिक उपलब्धियों को जन जन तक पहुंचाने का एक मात्र माध्यम राजभाषा हिंदी ही है। लेकिन यह थोड़ा दुरूह कार्य अवश्य है। पत्रिका में प्रकाशित विज्ञान संबंधी कविताएं मनोरंजक तथा ज्ञान वर्द्धक साबित होंगी। 'वैज्ञानिक', स्कूल तथा कालेज की नियमित पत्रिका का स्थान ले रही है। आशा है यह पत्रिका भविष्य में अनवरत रुप से प्रकाशित होती रहेगी। पत्रिका के स्वरुप में और सुधार लाया जा सकता है। क्योंकि दुनिया चका चौंध से भी प्रभावित होती है।

16-1-97

भगत राम नौटियाल
वैज्ञानिक, भारतीय पेट्रोलियम संस्थान,
पो. ऑ. - आई. आई. पी., मोहकमपुर,
देहरादून - 248 005

आपके अनुसंधान केंद्र की प्रतिष्ठित हिंदी विज्ञान पत्रिका "वैज्ञानिक" का जनवरी-जून 1996 अंक देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ, धन्यवाद। आज जबकि वैज्ञानिक व तकनीकी क्षेत्रों में राजभाषा हिंदी की बात को लेकर बराबर प्रश्न उठते रहे हैं ऐसे दौर में आप उत्कृष्ट हिंदी पत्रिका का प्रकाशन कर यह सिद्ध कर रहे हैं कि राजभाषा हिंदी वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षेत्रों में भी अभिव्यक्ति दे पाने में पूर्णतः सक्षम है। ऐसे उत्कृष्ट संपादन का श्रेय संपादक मंडल को जाता है।

21-1-97

डॉ. दिनेश चमोला
संपादक " विकल्प"
भारतीय पेट्रोलियम संस्थान,
पो. ऑ. - आई. आई. पी. मोहकमपुर,
देहरादून - 248 005

ऐसा प्रतीत होता है कि आप वनस्पति विज्ञान से संबंधित ज्यादातर लेख टिप्पणी के रुप में ही प्रकाशित करते हैं। क्या "वैज्ञानिक" में प्रथम स्थान भौतिकी एवं रसायन विज्ञान से संबंधित आलेखों के लिए आरक्षित है?

25-2-97

एन. के. बौहरा,
प्लॉट नं. 389, गली नं. 10,
मिल्कमैन कॉलोनी, पॉल रोड, जोधपुर (राज.)

(लेख/टिप्पणी का वर्गीकरण सामग्री में निहित जानकारी तथा उसकी संपूर्णता पर आधारित होता है न कि विषय विशेष पर। कृपया "वैज्ञानिक" में प्रकाशित लेखों का पुनरावलोकन करें - सं.)

अक्तूबर - दिसंबर 1996 के अंक में डॉ. देवकी नंदन द्वारा लिखित "अंतरिक्ष युग का पहला दिन" अत्यंत रोचक, ज्ञानवर्धक एवं रोमांचकारी लगा। लेखक द्वारा मिनट व मिनट अंतरिक्ष यान के उड़ान के वर्णन ने पाठक के मन तथा मस्तिष्क को बांधे रखा। इस प्रकार के लेख के लिए आप बधाई के पात्र हैं तथा मेरी ओर से लेखक को भी बहुत बहुत बधाई।

इसी प्रकार के और रोमांचकारी लेखों का इंतज़ार रहेगा।

तुलसी राम बांगिया
रेडियो रसायनिकी प्रभाग,
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई - 400 085

"हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद" का वार्षिक प्रतिवेदन (1995-96) पढ़ने के पश्चात लगा कि हिंदी के माध्यम से विज्ञान एवं शोध को जन-जन तक पहुँचाने में आपके प्रयास सराहनीय है ! वैज्ञानिक मोनोग्राफ का प्रकाशन भी इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

'वैज्ञानिक" के प्रत्येक अंक में प्रकाशित लेख एवं टिप्पणियाँ काफी रोचक होते हैं और नये तथ्यों की जानकारी देते हैं। साथ ही ये व्यावहारिक एवं दैनिक जीवन में काफी उपयोगी हैं। इसका प्रत्येक अंक वस्तुतः संग्रहणीय है ! बाल विज्ञान के अंतर्गत दी गयी जानकारी किशोरों के लिए काफी रुचिकर होती है एवं बच्चों में विज्ञान संबंधी नयी जिज्ञासाओं को जगाती है तथा उनका समाधान भी करती हैं। पिछले कुछ अंकों को मेरी पुत्री ने काफी रुचि से पढ़ा। स्वास्थ्य, पर्यावरण, खगोलिकी संबंधी लेख महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्रदान करते हैं। कृपया प्राचीन

भारत में विज्ञान, वैज्ञानिक धरोहर, वास्तु कला एवं धातु कर्म आदि पर भी अपनी पत्रिका के माध्यम से पाठकों को जानकारी प्रदान करें।

2-6-97

डॉ. राम प्रवेश भगत,
वैज्ञानिक ई-II,
सचिव, राजभाषा कार्यान्वयन समिति,
राष्ट्रीय धातुकर्म प्रयोगशाला, जमशेदपुर 831007

"वैज्ञानिक" के अक्टूबर - दिसंबर, 1996 अंक में श्री श्याम लाल धीमान द्वारा 'बाल विज्ञान' के अंतर्गत 'चंद्रमा साथ-साथ चलता क्यों दिखाई देता है ?' प्रश्न पर कुछ जानकारी दी गयी है जो पूरी तरह से स्पष्ट नहीं है मेरे विचार से इस प्रश्न की व्याख्या इस प्रकार उचित रहेगी। जब हम चलते हैं तो जो वस्तु स्थिर है, उसका कोण हमारे चलने की दिशा के सापेक्ष बदलता रहता है। और यदि हम उसकी ओर लगातार देखते हैं तो सिर को घुमाना पड़ता है। इसके विपरीत जो वस्तु हमारे साथ साथ समान गति से चल रही है उसका कोण हमारे चलने की दिशा के सापेक्ष स्थिर रहता है और उसे देखने के लिए हमें सिर को घुमाना नहीं पड़ता है। चंद्रमा हमसे इतना अधिक दूर है कि चलते हुए उसका कोण हमारे चलने की दिशा के सापेक्ष लगभग स्थिर रहता है और वह हमें साथ-साथ चलता प्रतीत होता है।

डॉ. शिव कुमार गुप्ता,
वैज्ञानिक अधिकारी,
तकनीकी भौतिकी एवं प्रारूप इंजी. प्रभाग,
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई - 400 085

नोबेल पुरस्कार *(पृष्ठ - 33 का शेष भाग)*

के साथ प्रवाह संबंधी अनेक प्रयोग किये गये इन सभी में सतत धारा प्राप्त हुई। इस तरह अतितरलता का होना सिद्ध हो सका।

सबसे प्रसिद्ध सिद्धांत इलिनॉय विश्वविद्यालय के प्रो. टोनी लेगेट ने विकसित किया। इनकी इस संकल्पना को "Spontaneous Broken Spin-Orbit Symmetry (SBSOS)" के नाम से जाना जाता है।

अब यह माना जाता है कि ^3He में भी कूपर युग्मन की विधि ही काम करती है, जिसमें S=1 और L=1 होता है।

मास्को की लन्डॉउ इन्स्टीट्यूट के वैज्ञानिक प्रो. ग्रेगरी वलोविक ने इस बात पर जोर दिया है कि जिस ब्रह्मांड में हम रहते हैं उसके भौतिक निर्वात की भंग सममिति संरचना (broken symmetry structure) की जटिलता अतितरल ^3He के समान है। आरंभ में ब्रह्मांड के ठंडा होने की प्रक्रिया में जो सममित के भंग होने से संबंधित संक्रमण हुए हैं उनमें और ^3He ठंडा होने की प्रक्रिया में समानता है।

इंग्लैंड की लेंकेस्टर, फ्रांस की ग्रेनोबल और फिनलैंड की हेलन्सिकी की प्रयोगशालाओं में ऐसे प्रयोग हुए हैं जिनमें यह देखा गया है कि जब एक न्यूट्रॉन अतितरल ^3He में अवशोषित होता है तो उससे जो स्थानीय गरमी पैदा होती है उसे एक सूक्ष्म बिग बैंग माना जा सकता है। ली, रिचर्डसन और ओशेराफ की इस महत्वपूर्ण खोज ने एक नये विषय को जन्म दिया है, जिसका प्रभाव विज्ञान के कई विषयों जैसे कॉस्मोलॉजी पर भी पड़ेगा।

अंततः यहाँ यह बताना आवश्यक है कि ^3He और ^4He के मिश्रण में कई असाधारण गुण हैं। इसमें भी अतितरलता के गुण की संभावना है। अभी तक इसे 100 माइक्रो केल्विन (10^{-4} के.) के तापक्रम तक अध्ययन किया गया है, लेकिन अतितरलता नहीं देखी गयी। भविष्य में इसको यदि 10^{-4} के. के नीचे ठंडा किया जा सका तो इसमें अतितरलता देखे जाने की संभावना है और शायद एक नया नोबेल पुरस्कार दिया जायेगा।

वैज्ञानिक संगोष्ठी
आर्थिक विकास में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का योगदान
3 - 4 सितंबर, 1997
राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान
दोना पावला, पणजी, गोवा 403004
: सह-आयोजक :
हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, मुंबई 85

विकिरण समस्थानिक [रेडियोआइसोटोप]

वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय प्रगति हेतु अनिवार्य साधन

विकिरण एवं आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड (बी आर आई टी) ने देश में विविध रेडियो उत्पादों की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने में स्वयं को पूर्णतया समर्पित किया है। रेडियोआइसोटोप के उत्पादन एवं अनुप्रयोग हेतु इस क्षेत्र में अनुसंधान की कुछ उत्कृष्ट सुविधाएं ट्रॉंबे में स्थापित की गयी हैं। स्वदेशी अनुसंधान एवं विकास कार्यों पर निर्भर रहते हुए 'ब्रिट' (बी आर आई टी) ने रेडियो आइसोटोप उत्पादों का विस्तृत रूप से विकास किया है एवं देश - विदेश के 1000 से भी अधिक संगठनों की आवश्यकताओं की आपूर्ति की है।

कुछ महत्वपूर्ण उत्पाद एवं सेवाएं इस प्रकार हैं :

- **विकिरण भेषज (रेडियोफार्मास्युटिकल्स) :**
  विभिन्न प्रकार के रोगों के निदान एवं थायराइड रोगों के उपचार हेतु।
- **विकिरण प्रतिरक्षा आमापन (रेडियो इम्यूनो ऐसे) किट्स :**
  हार्मोन्स तथा औषधियों की सूक्ष्म मात्रा के आकलन हेतु।
- **रेडियोरसायन एवं विकिरण स्रोत :**
  अनुसंधान, औद्योगिक अनुप्रयोगों एवं कैन्सर रोगोपचार हेतु।
- **रेडियोग्राफी कैमरे एवं उपसाधन :**
  सांचों तथा वेल्डों के रेडियोग्राफिक निरीक्षण हेतु।
- **गामा किरणन उपस्कर :**
  चिकित्सा उत्पादों के विकिरण निर्जर्मीकरण या खाद्य किरणन हेतु।
- **विकिरण निर्जर्मीकरण सेवा :**
  प्रयोज्य चिकित्सा उत्पादों जैसे, आइ. सैट, वी. कैथीटर (मूत्रनलिका), जाली का कपड़ा, रुई, शल्य ब्लेड, दस्तानें, रिक्त पात्र आदि के विकिरण निर्जर्मीकरण हेतु।

कृपया अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करें :

वरिष्ठ प्रबंधक एवं विपणन संचालन प्रभारी,

विकिरण एवं आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड (बी आर आई टी)

वि. ना. पुरव मार्ग, देवनार, बम्बई - 400 094.

टेलीफोन : 555 1676/555 3145

तार : ब्रिट एटम, बम्बई - 94, टेलेक्स : 011 72212 ब्रिट इन

With Best Compliments from

INDIAN RARE EARTHS LTD.

Offers the following products :

Beach Sand Minerals

Ilmenite (TiO_2 : 60%, 55% & 50%)
Natural Rutile
Zircon/Zircon Flour
Granular Silimanite (-65 +100 Mesh)
Garnet
Leucoxene and Synthetic Rutile

Rare Earths

Rare Earths Chloride
(original and heavies-lean)
Rare Earths Fluoride
Rare Earths Oxide
Cerium Oxide/Cerium Hydrate
Didymlum Carbonate
Samarium/Yttrium/Gadolinium/Europium
Concentrates (Individual and Mixed)

Particular attention of Interested buyers/users is drawn to the following products available at very attractive prices :

Synthetic Rutile (93% TiO_2)
Ilmenite : MK Grade (55% TiO_2 Min.)
Zircon (65% ZrO_2 with max. 0.2% TiO_2 and 0.1% Fe_2O_3)
Granular Silimanite (Min. 59% Al_2O_3)
Samarium Oxide (96%)

For further details, please contact :

The Chief General Manager (Mktg.)
Indian Rare Earths Ltd.
Sherbanoo, 6th Floor, 111, Maharshi Karve Road,
Churchgate, Mumbai - 400 020. INDIA
Tel. : (022) 209 6800, 203 0915 # Fax : (022) 200 4430
Tlx. : (11) 83122, 83254 # Cable : RAREARTH, BOMBAY, INDIA

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के लिए डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल द्वारा संपादित तथा
श्री इंद्र कुमार शर्मा द्वारा प्रिंट शॉप, चेंबूर, मुंबई (फोन : 555 2348) में मुद्रित व प्रकाशित ।

वैज्ञानिक (त्रैमासिक) R. No. 18862/70

दिल्ली, नयी दिल्ली, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान व उ. प्र. के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूल व कॉलेजों के लिए स्वीकृत ।

भारत सरकार
परमाणु ऊर्जा विभाग

नाभिकीय ईंधन सम्मिश्र
हैदराबाद - 500 062

क्षैतिज बहिर्वेधन दाब से

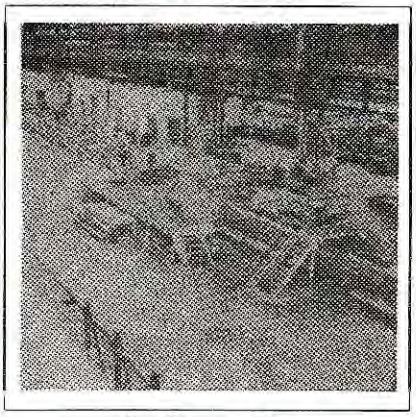

शीत पिल्गरन मिल

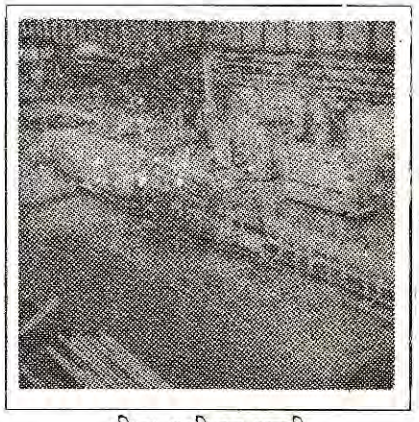

दीप्त अनीलन भट्टी

निम्नलिखित पदार्थों का वाणिज्यिक स्तर पर निर्माण एवं उनकी आपूर्ति की जाती है :-

संधिरहित जंगरोधी इस्पात नलिकाएं / पाइप

रसायन, उर्वरक, धातुकीय, पेट्रोरसायन, तेलशोधक, नाभिकीय तथा विद्युत उत्पादन के उद्योगों के लिए एएसटीएम ए 312/213/269 के अनुसार ऑस्टेनिटिक स्तर की नालिका/पाइप का तीसरे पक्ष/ एन. एफ. सी. द्वारा निरीक्षण ।

ठेके का कार्य

ग्राहकों द्वारा कच्चे माल दिये जाने पर कुप्रोनिकल, टाइटेनियम और अन्य फेरस व अ-फेरस श्रेणियों को बहिर्वेधन/शीत वेल्लन की बेयरिंग इस्पात नलिकाओं में बदलने के लिए काम स्वीकारे जाते हैं ।

अतिउच्च शुद्धता के विशेष पदार्थ

इलेक्ट्रॉनिक उद्योग के लिए 99.999% शुद्धता के एंटीमनी, बिस्मथ, इंडियम, कैडमियम, जिंक, स्वर्ण, स्वर्ण पोटैशियम साइनाइड आदि की आपूर्ति ।

फोटोकॉपी के लिए अति उच्च शुद्धता के सेलेनियम व टेल्युरियम, इलेक्ट्रॉनिक बल्ब के निर्माण के लिए जर्कोनियम चूर्ण, रसायन और उर्वरक उद्योगों के लिए टेंटालम चादरों तथा छड़ों और संविरचित पदार्थों की आपूर्ति ।

अपनी सभी आवश्यकताओं के लिए लिखें :

विपणन प्रबंधक,
नाभिकीय ईंधन सम्मिश्र
पोस्ट : इ. सी. आई. एल., हैदराबाद 500 062.
● दूरभाष : 7120151 विस्तार (4224) ● (सीधे) 7121239
● टेलेक्स : 0425-7004 ● ग्राम : "एनयूसीएफयूइएल"
● फैक्स : 040-7121209, 7121305

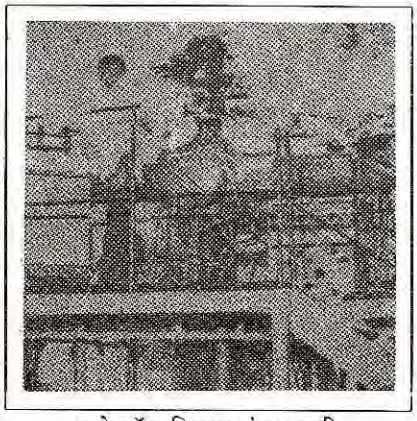

इलेक्ट्रॉन किरण पुंज भट्टी